बाल विज्ञान पत्रिका

चकमक

अप्रैल, 1989

रु. 4.00

श्याम बिहारी सिंह कमरिया,छठवीं,उँचिया,दतिया

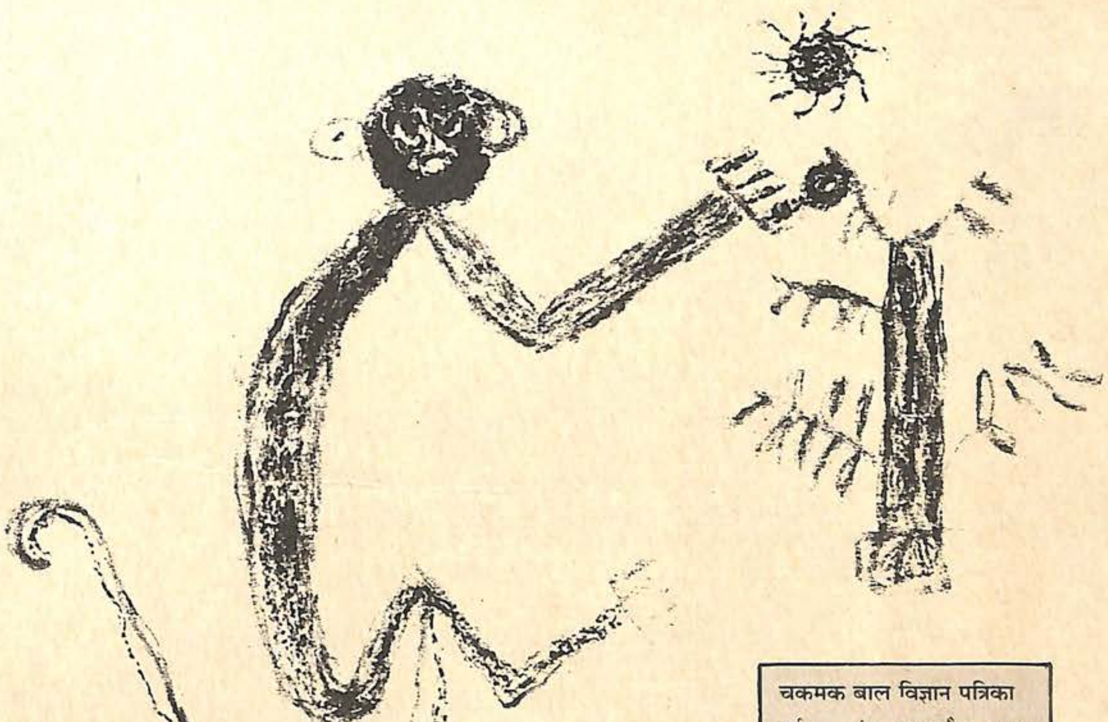

चित्र : राजेन्द्र सिंह, छटवीं, पालखंदा

चकमक बाल विज्ञान पत्रिका
वर्ष 4 अंक 10 अप्रैल, 1989
संपादक
विनोद रायना
सह-संपादक
राजेश उत्साही
कला
जया विवेक
उत्पादन/वितरण
हिमांशु बिस्वास, कमलसिंह

इस अंक में

मेरा पन्ना	3
काम करता बचपन	7
कौआ	17
माथापच्ची	18
खतरा ; स्कूल - आठ	20
कहानी : आफत बुढ़िया की	27
अपनी प्रयोगशाला	31
दो कविताएं	32
मारी क्यूरी-3	34
खेल कागज़ का	39

आवरण : कैरन

चकमक का चंदा
एक प्रति : चार रुपए
छमाही : बीस रुपए
वार्षिक : चालीस रुपए
डाक खर्च मुफ्त
चंदा, मनीआर्डर या बैंक ड्राफ्ट से एकलव्य के नाम पर भेजें।
कृपया चेक न भेजें।

पत्र/चंदा/रचना भेजने का पता :
एकलव्य,
ई-1/208, अरेरा कालोनी,
भोपाल-462 016 (म.प्र.).

कागज़ : 'यूनिसेफ' के सौजन्य से
सहयोग : राष्ट्रीय विज्ञान व प्रौद्योगिकी संचार परिषद् (विज्ञान व प्रौद्योगिकी विभाग, नई दिल्ली)

एकलव्य एक स्वैच्छिक संस्था है जो शिक्षा, जनविज्ञान एवं अन्य क्षेत्रों में कार्यरत है। चकमक, एकलव्य द्वारा प्रकाशित अव्यवसायिक पत्रिका है। चकमक का उद्देश्य बच्चों की स्वाभाविक अभिव्यक्ति, कल्पनाशीलता, कौशल और सोच को स्थानीय परिवेश में विकसित करना है।

राष्ट्रीय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संचार परिषद्
विज्ञान और प्रौद्योगिकी विभाग
(भारत सरकार)

सत्यमेव जयते

बच्चों में विज्ञान लोकप्रियकरण हेतु 1987 में किये गये
सर्वोत्तम प्रयासों के लिए
रा.वि.प्रौ.सं.प. का
पचास हज़ार रूपये का राष्ट्रीय पुरस्कार

एकलव्य (भोपाल)

को

प्रदान करती है,

उनके उत्कृष्ट और अथक प्रयासों के लिये, जिन्होंने लोकप्रिय बाल विज्ञान हिन्दी मासिक **चकमक** तथा
अपने दूसरे प्रकाशनों के अलावा अनेक बच्चों को वैज्ञानिक तथा तकनीकी मूल्यों तथा
चेतना के संवाहक बनाया है और इनमें से कईयों ने विज्ञान
बाल-उत्सवों के माध्यम द्वारा देशभर से आये
दूसरे बच्चों को प्रेरित किया।

आज
राष्ट्रीय विज्ञान दिवस, 28 फरवरी 1989
के दिन प्रदत्त.

पाठकों को बधाई!

के.आर. नारायणन
(के.आर. नारायणन)
अध्यक्ष, राष्ट्रीय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संचार परिषद्
एवं केन्द्रीय राज्य-मंत्री (विज्ञान और प्रौद्योगिकी)

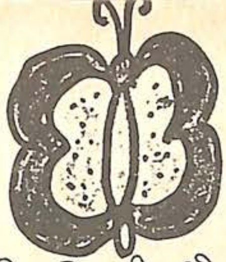

एक थी तितली और एक फूल था।

उन दोनों में बहुत सी बात थी।

फूल प्रतिदिन तितली को अपना पराग देता।

एक दिन तितली फूल का पराग चूसने नहीं आई।

इसलिए फूल को बड़ा दुख हुआ।

और फिर उससे रहा न गया तो वह तितली के घर गया।

तब उसने देखा कि तितली बीमार पड़ गई है।

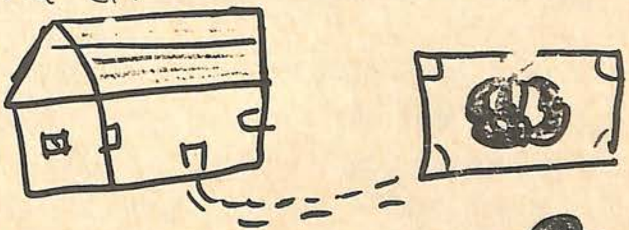

तो उसे बहुत ज्यादा दुख हुआ।

उसने तितली का बहुत इलाज कराया

फिर भी कुछ नहीं हुआ।

और तितली कुछ ही दिनों बाद मर गई।

तब फूल को अकेला पन सहा न गया,

और वह अकेला रह गया।

कुछ दिनों बाद वह भी मर गया।

चित्र कहानी : श्वेता तिवारी, छटवीं, हरदा
लिखावट : संगीता, तीसरी, भोपाल

कुल्फी वाला सुरेश

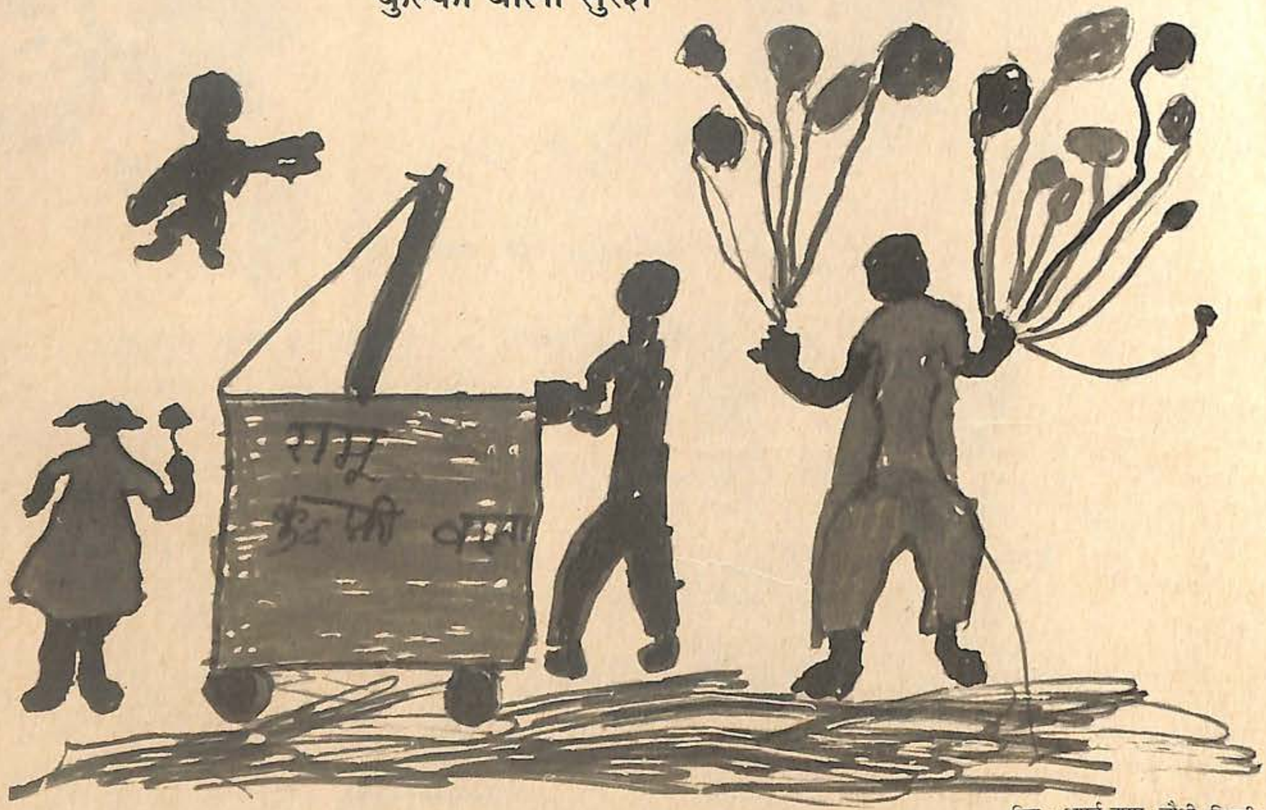

चित्र : अपूर्व नागर, चौथी, दिल्ली

परसों मैं बाल अखबार बेच रहा था। मैंने देखा कि एक कुल्फी बेचने वाला लड़का आ रहा है। मैंने कहा - बाल अखबार चाहिए? उसने कहा - नहीं। मैंने पूछा तुम्हारा नाम क्या हैं? उसने कहा - सुरेश। मैंने पूछा तुम कुल्फी बेचने के सिवाय और भी धंधा करते हो। उसने कहा - हां! मैंने कहा-क्या-क्या। उसने कहा - जामुन बेर बेचते हैं। मैंने कहा - तुम कितने भाई बहन हो? उसने कहा - एक बड़ा भाई और एक बहन। मैंने पूछा - वे क्या करते हैं? उसने कहा - भाई कुल्फी बेचता है और बहन स्कूल के सामने बैठकर बेर बेचती है। मैंने पूछा - तुम्हारे माता पिता हैं? उसने कहा - हां। मैंने पूछा माता-पिता क्या करते हैं? उसने कहा - मां बर्तन मांजती है और पिता जो पैसे हम कमाकर ले जाते हैं उन पैसों की दारू पी लेता है। मैंने पूछा तुम दिन भर में कितने पैसे कमा लेते हो। उसने कहा - 20 रु. तक कमा लेते हैं। मैंने पूछा - तुम पर कोई अत्याचार नहीं करता। उसने कहा - अगर हम पैसे नहीं कमाते हैं तो पिता खूब मारता है और रात को खाना नहीं देता।

इतने में उसका ग्राहक आ गया।

□ कृष्ण कांत परसाई, पांचवी, पिपरिया (बालचिरैया)

छोटेवीर

पहले हमारे घर बर्तन मांजने वाली आया करती थी। कभी-कभी उसका लड़का भी उसके साथ आ जाता था। हमारी उससे दोस्ती हो गई। कल अचानक वह एक होटल की दुकान पर काम करता दिख गया। उसका नाम छोटेवीर है और उम्र 13 वर्ष है। वह चौथी तक ही पढ़ा है। उसकी मां अभी भी बर्तन मांजती है। वह होटल में काम करता है। उसका एक बड़ा भाई है, वही भी किसी होटल पर काम करता है। उसके पिताजी पचमढ़ी में कोई छोटी-सी नौकरी करते हैं। उसे सप्ताह में 25/- रु. तनख्वाह मिलती है। मैंने

पूछा, उसने चौथी के बाद पढ़ना क्यों छोड़ दिया? तब वह बोला, मास्टर लोग मारते हैं। इस कारण हमने पढ़ना छोड़ दिया। मैंने पूछा-तुम्हारे कितने भाई बहन हैं तो उसने बताया हम लोग छह भाई हैं पर बहन एक भी नहीं है। मैंने पूछा-पिताजी घर में ही रहते हैं या पचमढ़ी में। उसने बताया-पिताजी रहते तो पचमढ़ी में ही हैं किन्तु महिने में एक बार पिपरिया ज़रूर आते हैं। मैंने पूछा-वह कभी पिताजी के साथ पचमढ़ी गया है। उसने कहा - एक बार गया था। वहां कुछ देखा? उसने बताया-नहीं देख पाया था क्योंकि मैं दूसरे ही दिन वापस आ गया था। इतने में उसे होटल के मालिक ने आवाज़ दी तो वह दौड़कर होटल के अन्दर चला गया।

□ विपुल गुप्ता, आठवीं, पिपरिया
(बालचिंग्या)

चित्र : अनुज गोयल, तीसरी, रायपुर

दूधवाला

मुझे एक दूध वाला लड़का मिला। मैंने उससे पूछा कि तुम्हारा नाम क्या है। उसने कहा - पप्पू। मैंने उससे पूछा-तुम कितने भाई बहन हो। उसने कहा-मेरी चार बहिनें है और मैं अकेला भाई हूं। मैंने पूछा तुम्हारे पिताजी क्या करते हैं। उसने कहा - पिताजी खेती किसानी करते हैं और मां घर का काम काज करती है।

मैंने पूछा तुम्हारे घर पर कितनी गाय हैं। उसने कहा - घर पर पांच-छः गायें हैं। मैंने पूछा-तुम्हारी कितने घर बंदी लगी है-उसने जवाब दिया - पन्द्रह-बीस घर। मैंने पूछा-तुम दूध देने सबेरे जाते हो कि शाम को जाते हो। वह बोला - सबेरे भी जाता हूं और शाम को भी जाता हूं। मैंने पूछा ज़्यादातर दूध कहां देते हो। उसने कहा - सबका सब दूध मोहता प्लाट में सेठों के घर देता हूं। मैंने पूछा-गाय को लगाता कौन है। उसने कहा-लगा तो मैं भी लेता हूं पर ज़्यादातर पिताजी या मां ही लगाते हैं। हमारी बातचीत खिचती ही जा रही थी कि अचानक उसको कुछ याद आ गया और बोला-अच्छा भैया मैं जल्दी जाऊं नहीं तो लेट हो जाऊंगा और पिताजी डांटेंगे। वह अपनी रोज की बंदी में दूध देने चला गया।

□ राजकुमार मालवीय, आठवीं, पिपरिया
(बालचिरैया)

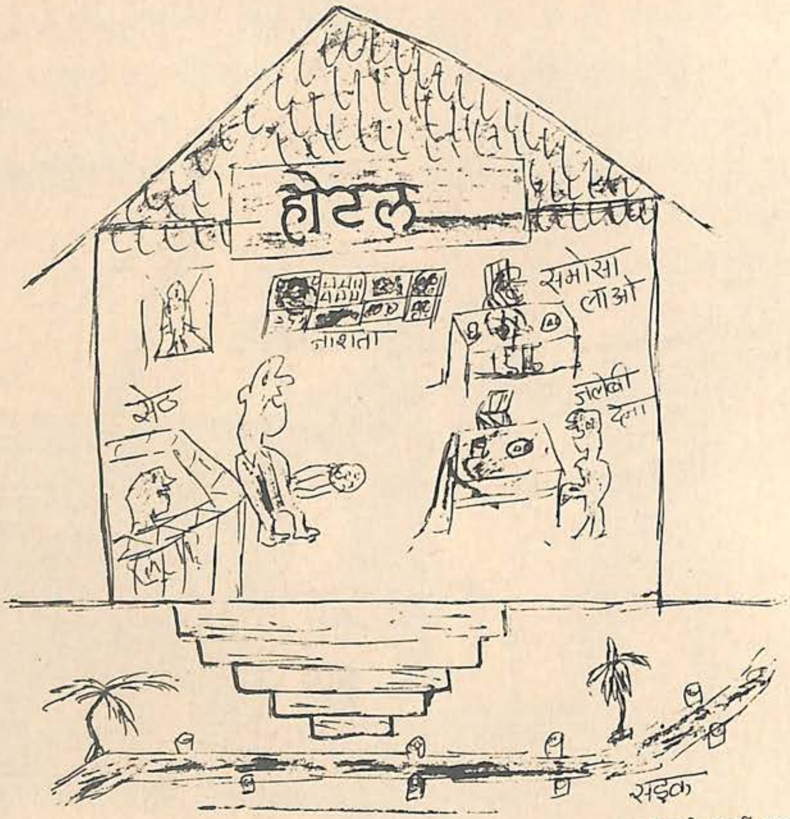

चित्र : राजेश तिवारी, दसवीं, अचानकपुर, रायपुर

टुल्ला

मैं रोज़ विद्यालय जाता हूं। रास्ते में नई सड़क बनने का काम हो रहा था। इसलिए हम सब मित्र वहां से ही जाते हैं। एक दिन हमने देखा कि एक आदमी एक लड़के को डांट रहा था। हम सब देख रहे थे। हमें विद्यालय जाने में देर हो रही थी, इसलिए हम सीधे विद्यालय गए।

जब हमारी आधी छुट्टी हुई तो मैं अपने दोस्त जयंत के साथ होटल में समोसा खाने गया। हमने वहां उस लड़के को देखा जिसे विद्यालय आते समय कोई आदमी डांट रहा था। हमने उसे अपने पास बुलाया और पूछा कि तुम्हें वह आदमी क्यों डांट रहा था। उसने कहा, मैंने उससे पैसे लिए थे। जिन्हें मैं अभी तक नहीं लौटा पाया।

तभी होटल के मालिक ने उसे डांटते हुए कहा, टुल्ला, साहब को चाय दो! वह चाय देने चला गया। हमने समोसे खरीदे और उस लड़के को देखते भी रहे। बेचारा कितना काम करता है। सबकी डांट खाता है। हमने उसे अपना दोस्त बना लिया।

हमने उससे पूछा, "क्या तुम्हारा मन पढ़ने को नहीं करता?"

वह बोला, "मेरा मन पढ़ने को तो बहुत करता है, पर मेरे पास पैसे नहीं हैं कि किताबें खरीद सकूं।"

मैंने कहा, "अपने माता-पिता से मांग लिया करो।"

तो वह बोला, "मेरे पिता रोजनदारी करते हैं। जब वहां काम खत्म हो जाता है तो वह छुट्टी कर देता है। कभी घर में चूल्हा जलता है कभी नहीं। मेरी मां बर्तन मांजती है, जिससे थोड़ा बहुत पैसा मिलता है, जो कुछ ही दिनों में खत्म हो जाता है।"

इतने में विद्यालय की घंटी बज गई और हम विद्यालय वापस आ गए।

□ कमलेश खैरिया, नवमीं, भोपाल

काम करता बचपन

धोता कप प्लेट यहां पे
चार रुपए रेट यहां पे
दुष्ट बड़ा सेठ यहां पे
गाली पड़ती ठेठ यहां पे

कपड़े धोती बर्तन घिसती
बारहों मास यूं ही पिसती
बुखार आता, घाव है रिसता
बचपन मेरा यूं ही बिकता

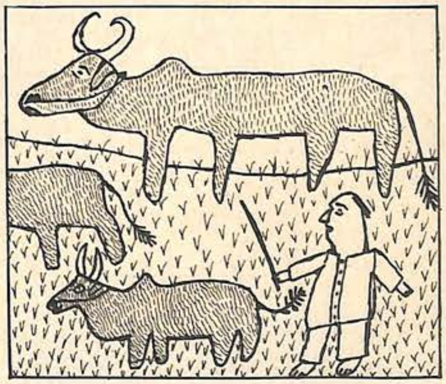

चारा काटूं पानी लाऊं
ढोर चराने मैं जाऊं
खेत-खलिहान भी रखाऊं
डांट सभी की फिर खाऊं

कहीं दूर जाने की ज़रूरत नहीं है। इन कविताओं के पात्र हमारे आसपास ही मिल जाएंगे। और कई तो तुम्हारे साथी ही होंगे। कहीं तुम स्वयं भी तो नहीं.....!

आज की दुनिया यह मानती है कि बच्चों से काम नहीं लेना चाहिए। कम से कम चौदह साल तक की उम्र खेलने-कूदने और पढ़ने-लिखने की है। और यह दुनिया सिर्फ मानती ही नहीं... उसने बच्चों से काम न लेने के लिए कानून भी बना रखे हैं। भारतीय संविधान के अनुच्छेद-24 के तहत चौदह वर्ष से कम आयु के बच्चों से खतरनाक काम करवाना उनके मौलिक अधिकारों का हनन है। पर इन सब कानूनों को ताक में रखकर भारत सहित दुनिया भर में करोड़ों बच्चों से काम लिया जाता है, करवाया जाता है।

वैसे तो बच्चों से हर तरह के काम करवाए जाते हैं। पर यदि हम एक वर्गीकरण करने की कोशिश करें तो पाएंगे कि गांव में बच्चों से जो काम करवाए जाते हैं उनमें ढोर चराना, निंदाई करना, कटाई में पूले बांधना, चारा काटना, पानी भरना, खेत-खलिहान रखाना, बोझा ढोना आदि शामिल हैं। यदि घर में ही कुछ काम होता है तो बच्चों को घर के अन्य सदस्यों का हाथ बंटाना होता है। कुछ न हुआ तो छोटे भाई-बहनों को संभालने की जिम्मेदारी ही आन पड़ती है। और ऐसा करना हर दृष्टि से उचित ही समझा जाता है।

शहर में काम करने वाले बच्चों को होटल, गैराज और बड़े घरों में आसानी से देखा जा सकता है। इनके अतिरिक्त कबाड़ बीनते, किराने की दुकान में, अखबार में, प्रिंटिंग प्रेस में, गलियों में सब्जी बेचते, बूट पालिश करते ऐसी तमाम जगहों पर देखा जा सकता है। छोटे-मोटे कारखानों में भी हज़ारों-लाखों की संख्या में बाल श्रमिक काम करते हैं। शिवकासी के माचिस और आतिशबाजी उद्योग, फिरोजाबाद का कांच उद्योग, आदि तो उदाहरण के तौर पर गिनवाए जाते हैं।

आओ तुम्हें कुछ ऐसे बच्चों से मिलवाते हैं।

दस साल की लक्ष्मी पांच दिन गैर हाज़िर रहकर जब छंठवे दिन स्कूल पहुंची तो गुरूजी चिल्लाए, "क्या खाक पढ़ाई करेंगी ये लड़कियां! छात्रवृत्ति का पैसा लेकर मस्त हैं। पढ़ने-लिखने से क्या काम। बस सरकार का पैसा बरबाद करो।" कुछ बच्चों ने भी गुरूजी की हां में हां मिलाई और हंस पड़े। लक्ष्मी सिर नीचा किए चुपचाप खड़ी रही।

गुरूजी शायद नहीं जानते (संभव है जानते भी हों) कि लक्ष्मी की मां की पांच रोज़ से बीमार है। मां की देखभाल करने और घर का पूरा काम करने की ज़िम्मेदारी लक्ष्मी की है। इतना ही नहीं मां की जगह उसे पटेल के घर का पानी भरने भी जाना पड़ता है। इतने सब काम करने के बावजूद वह आज स्कूल भी आ गई। ऐसी न जाने कितनी लक्ष्मी हैं? ऐसी ही

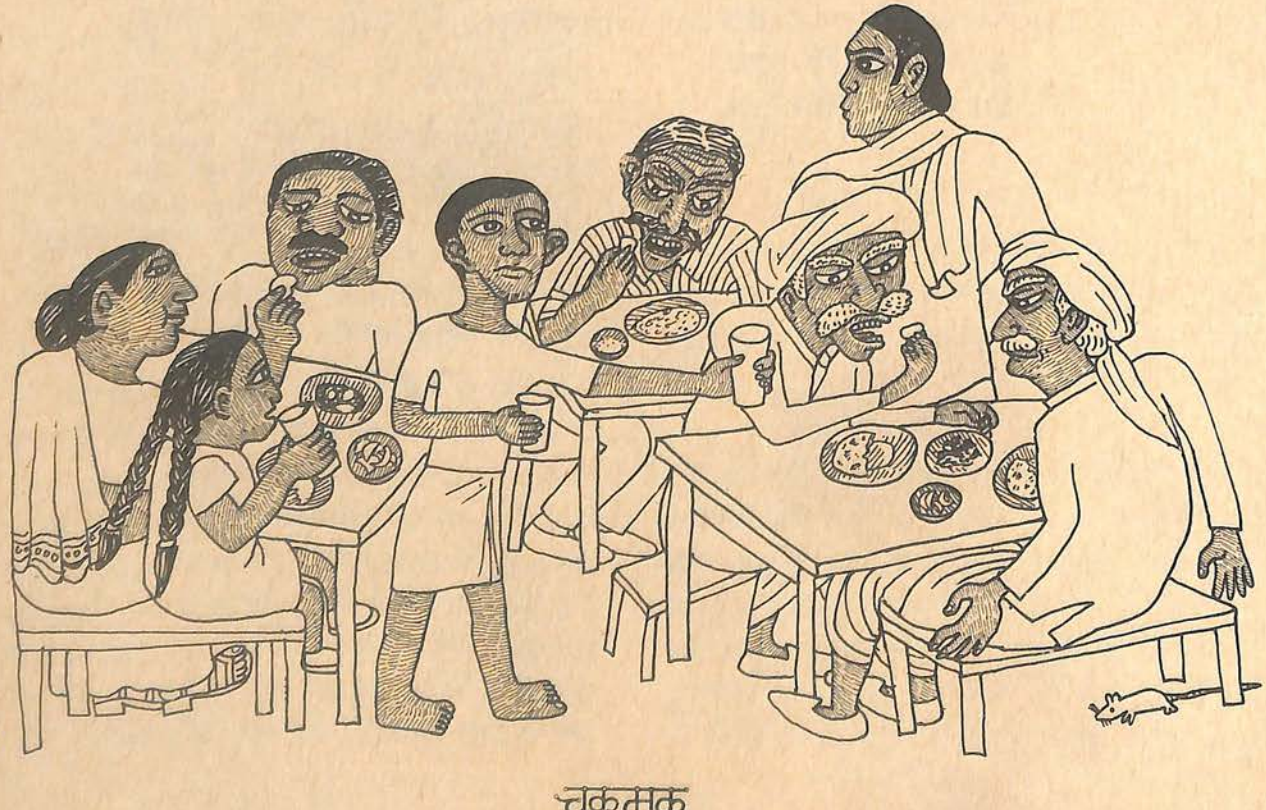

एक लक्ष्मी का कहना है, " छह साल की इस उम्र में ही ज़िंदगी के हर दिन का मतलब है काम, स्कूल, काम और फिर वापस घर जहां सोने से पहले भी काम करना पड़ता है।" ऐसी लक्ष्मी भला क्या पढ़ती होंगी!

कृष्णन अपनी उम्र सोलह साल बताता है, पर दिखता है सिर्फ बारह साल का। कृष्णन बम्बई की एक आफिस कैंटीन में काम करता है। उसे याद नहीं कि वह कितने दिनों से यहां काम कर रहा है। पर आफिस के लोग बताते हैं कि वे उसे पिछले चार साल से यहां देख रहे हैं। इस हिसाब से उसने कम से कम बारह साल की उम्र से काम करना शुरू कर दिया होगा।

कृष्णन के साथ अन्य चार-पांच बच्चे भी काम करते हैं। ये सभी मंगलूर (कर्नाटक) के पास स्थित एक गांव से आए हैं। इनके मां-बाप गांव में ही हैं। गांव से आने के बाद उनकी मुलाकात दुबारा अपने परिवार से नहीं हुई है।

कृष्णन और उसके साथी सुबह नौ बजे से शाम सात बजे तक काम करते हैं। लोगों को स्वादिष्ट खाना परोसते हैं। पर उन्हें मिलती है जूठन और बचा-खुचा खाना। कैंटीन के बरतन भी उन्हें ही साफ करने पड़ते हैं। कोई चीज़ टूट जाए या कुछ नुकसान हो जाए तो ग्राहकों और मैनेजर की डांट तो सुननी ही पड़ती है, पैसे कटते हैं सो अलग।

इस काम के लिए उन्हें रहने के लिए जगह, खाना और प्रतिमाह दो सौ रुपए मिलते हैं। इसमें से किसी तरह सौ-सवासौ रुपए बचाकर वे अपने घर भेज देते हैं। आफिस के कुछ लोग कभी-कभार पुराने कपड़े उन्हें दे देते हैं।

रमेश बम्बई नगर निगम के सफाई-विभाग में काम करता है। बम्बई में नालियां ढकी हुई होती हैं। रमेश जैसे बच्चे इन नालियों के 'मैनहोल' खोलकर उनमें उतरते हैं और सफाई करते हैं। ये नालियां इतनी छोटी होती हैं कि इनमें बच्चे ही घुस पाते हैं। सफाई के दौरान वे कीचड़ से बुरी तरह लथपथ हो जाते हैं। रमेश को यह काम बिलकुल पसंद नहीं है, पर वह क्या करे! उसे अपने सात लोगों के परिवार का पेट जो भरना है। रमेश का परिवार आंध्रप्रदेश के एक गांव में रहता है। रमेश को इस काम के लिए प्रतिमाह तेरह सौ रुपए मिलते हैं। किसी और काम में उसे इतने पैसे मिलने से रहे। रमेश बड़ा होकर बड़ी नालियां साफ करेगा। जिनमें इससे कई गुना गंदगी जमा होती है। इस गंदगी का सेहत पर बुरा असर पड़ता है। चमड़ी और फेफड़ों के रोग हो जाते है।

पंद्रह साल की उषा पिछले तीन साल से अपनी मां के साथ काम कर रही है। उसकी मां बम्बई में घरों में बरतन, कपड़े धोने, झाड़ू-पौंछा लगाने आदि का काम करती है। मां-बेटी को हर घर से औसतन सौ रुपए प्रतिमाह मिलते हैं।

उषा सुबह उठकर अपने परिवार के लिए खाना बनाती है और फिर काम पर निकल जाती है। सुबह से लेकर शाम छह बजे तक काम करती है। इस बीच किसी घर में उसे कुछ खाने को भी मिल जाता है। वैसे वह अपना खाना साथ लाती है। उषा की सारी कमाई परिवार पर ही खर्च हो जाती है। उसे अपने खर्चे के लिए कुछ नहीं मिलता है। दिवाली पर उसे कुछ अतिरिक्त पैसे अवश्य मिलते हैं, जिनसे वह अपने लिए नए कपड़े बनवाती है। कभी काम वाले घरों से कुछ पुराने कपड़े तथा जूते आदि भी मिल जाते हैं। वैसे उसे छुट्टी नहीं मिलती है, फिर भी साल भर में वह आठ-दस छुट्टी मना ही लेती है।

उषा पांचवीं तक पढ़ी है। और मराठी पढ़-लिख सकती है। काम करने के लिए उसकी पढ़ाई छुड़ा दी गई। उसकी छोटी बहन काम करने से मना करती है और पास के नगर पालिका स्कूल में पढ़ने जाती है। उषा के चार भाई हैं वे भी पढ़ने जाते हैं।

"**हमें** यहां एक घर के बंद कमरे में रखा गया। बाहर निकलने की इजाज़त नहीं थी। रोने पर पिटाई होती थी।" दस वर्षीय गौतम ने आंखों में दर्द भरकर यह सब बताया। गौतम चाय के एक ठेले पर काम करता था। गौतम और दूसरे बच्चों को राजस्थान के चितौड़गढ़, और म.प्र. के झाबुआ जिले से इंदौर लाया गया था। गौतम ने बताया, "घर में खाने को दाना नहीं था। मां-बाप बेरोज़गार थे। दो साल पहले एक आदमी जीप से हमारे गांव आया था। उसने मेरे पिता से बातचीत की। पिता से क्या बात हुई हमें पता नहीं। पिता ने कहा, इनके साथ चले जाओ ये घुमा देंगे। मैं जीप में बैठ गया, उसमें पांच बच्चे और थे।"

गौतम ने आगे बताया, "हमें जीप वाले का एक आदमी होटलों एवं घरों में काम करने के लिए छोड़ जाता था। जो होटल में काम करते थे, उन्हें रात बारह बजे तक तथा घरों में काम करने वालों की रात दस बजे तक वापसी होती थी। वापसी के लिए वही आदमी आता था। जहां पर हम काम करते थे, वहां से हमें खाना (जूठन) मिला करता था। वह समेट कर अपने ठिये पर लाना पड़ता था। एक कागज़ पर सारा खाना बिखेर दिया जाता था। वही खाना हम मिल जुल

बाल रोज़गार कानून 1988

बच्चों को कुछ रोज़गारों और प्रक्रियाओं में काम करने के लिए कानूनन मनाही है। इसके अनुसार निम्नलिखित धंधों में न तो बच्चों को रोज़गार दिया जाएगा और न ही काम करने दिया जाएगा।

भाग-एक : धंधों की सूची

कोई भी धंधा जो निम्नलिखित से संबंधित हो—

1. यात्री या सामान का रेल से यातायात
2. केरी या अंगार उठाना, राख के गड्ढे की सफाई, रेल की पटरियों या यार्ड के पास कोई भवन निमार्ण
3. रेलों में खाना देने से संबंधित जिसमें किसी व्यक्ति को एक प्लेटफार्म से दूसरे प्लेटफार्म या चलती ट्रेन के अंदर या बाहर जाने की ज़रूरत पड़ती हो
4. रेल्वे स्टेशन बनाने या ऐसे किसी काम में जो कि रेल्वे लाईन के पास या दो रेल्वे लाइनों के बीच किया जा रहा हो
5. किसी भी बंदरगाह के पास।

भाग-दो : प्रक्रियाओं की सूची

किसी ऐसे कारखाने में भी बच्चों को रोज़गार या काम देने की मनाही है जहां निम्नलिखित प्रक्रियाएं जारी हैं—

1. बीड़ी बनाना
2. कालीन बनाना
3. सीमेंट बनाना व सीमेंट बोरियों में भरना
4. कपड़ा बुनना, रंगना व छापना
5. माचिस, विस्फोटक पदार्थ व पटाखे बनाना
6. माइका काटना व फोड़ना
7. साबुन बनाना
8. चमड़ा पकाना
9. ऊन साफ करना
10. घर व भवन बनाना

पर इनमें से कोई भी कानून उन कारखानों या काम करने की जगहों पर लागू नहीं होंगे जहां वह धंधा परिवार में हो रहा हो या वह कारखाना किसी शाला का जो सरकार द्वारा स्थापित किया गया हो या सरकार से अनुदान प्राप्त करता हो।

केंद्रीय सरकार इस सूची में वैध तरीके से संशोधन कर सकती है।

इसके अलावा सरकार ने इन उद्योगों को बच्चों के लिए बहुत खतरनाक घोषित किया है—

1. माचिस उद्योग, शिवकासी (तमिलनाडु)
2. हीरा चमकाने का उद्योग, सूरत (गुजरात)
3. नग चमकाने का उद्योग, जयपुर (राजस्थान)
4. कांच उद्योग, फिरोजाबाद (उत्तर प्रदेश)
5. पीतल उद्योग, मुरादाबाद (उत्तर प्रदेश)
6. हाथ से कालीन बनाने का उद्योग, मिर्ज़ापुर-भदोही (उत्तर प्रदेश)
7. कालीन उद्योग, जम्मू-काश्मीर
8. ताला उद्योग, अलीगढ़ (उत्तर प्रदेश)
9. स्लेट पेंसिल उद्योग, मर्कापुर (आंध्रप्रदेश)
10. स्लेट पेंसिल उद्योग, मंदसौर (मध्यप्रदेश)

हाल ही में सरकार ने पटाखे बेचने के अस्थायी लाइसेंस वाली दुकानों, नुकसान देह धातुओं का इस्तेमाल करने वाली इकाईयों, स्लेट पेंसिल बनाने वाली इकाईयों और सुलेमानी पत्थर से विभिन्न वस्तुएं बनाने वाली इकाइयों में बच्चों के काम करने पर प्रतिबंध लगाया है।

कर खाते थे। हर हफ्ते वही आदमी होटल वाले से पैसे ले जाता था, जो हमें छोड़ने और लेने आता था।''

चौदह साल के शैलेष को सब्ज़ी का धंधा सिखाने के नाम पर इंदौर लाया गया था। शैलेष ने बताया, ''उस आदमी ने सब्ज़ी का धंधा सिखाने का वादा किया था। इंदौर लाकर मुझे होटल में लगा दिया-चाय पहुंचाने और जूठे बर्तन मांजने के काम पर।''

ऐसे तमाम कृष्णन, रमेश, उषा, गौतम और शैलेष हमारे आसपास मौजूद हैं।

छुट-पुट काम करने वालों के अलावा कल-कारखानों में तमाम बच्चे काम करते हैं। बीड़ी बनाने का काम तो कई शहरों में घर-घर होता है। चूंकि यह काम पूरे परिवार द्वारा किया जाता है इसलिए बच्चों को इस काम में शामिल कर पाने से रोकना मुश्किल है। बीड़ी बनाने के काम में तपेदिक और फेफड़ों की अन्य बीमारियों के होने की संभावना बहुत अधिक होती है।

बीड़ी उद्योग के अलावा भारत में विभिन्न क्षेत्रों के खास उद्योगों में हज़ारों-लाखों बच्चे काम करते हैं। ये उद्योग हैं—

1. माचिस और आतिशबाज़ी उद्योग, शिवकासी
2. कालीन उद्योग, मिर्ज़ापुर-भदोही (उ.प्र.), जम्मू कश्मीर
3. कांच और चूड़ी उद्योग, फिरोजाबाद (उ.प्र.)
4. ताला उद्योग, अलीगढ़
5. नग चमकाने का उद्योग, जयपुर
6. गुब्बारा उद्योग, दहानु (महाराष्ट्र)
7. स्लेट पेंसिल उद्योग, मंदसौर (म.प्र.), मर्कापुर (आंध्र प्रदेश)
8. देश भर में कपड़ा उद्योग

इन उद्योगों में काम करने की स्थितियां बहुत ही चिंताजनक हैं। यहां काम करने वाले बाल श्रमिकों में कई गौतम और शैलेष की तरह कहीं और से जबरन लाए गए होते हैं। और कुछ अपने जीवन की ज़रूरतों के कारण इस दलदल में आ फंसते हैं। उनके जीवन यापन का कोई और साधन नहीं होता है। कुछ खास उद्योगों का जिक्र हम यहां कर रहे हैं।

माचिस उद्योग, शिवकासी

शिवकासी के माचिस व आतिशबाज़ी उद्योग में काम करने वाले बच्चों के बारे में तुमने नवंबर, 88 की चकमक में पढ़ा ही होगा। कानून के अनुसार इस उद्योग में चौदह वर्ष से कम आयु के बच्चों का काम करना सख्त मना है। फिर भी हज़ारों बच्चे इस उद्योग में काम करते हैं। सरकार और बाकी दुनिया भी उनके बारे में जानती है। फिर भी उनकी स्थिति जस की तस है।

शिवकासी के एक कारखाने में काम कर रहे सात वर्षीय चिन्नदोराई का कहना है, ''मैंने स्कूल इसलिए छोड़ा क्योंकि गुरूजी मुझे मारते थे। पर अब मैं सोचता हूं कि काश मैं स्कूल नहीं छोड़ता। स्कूल इस कारखाने से तो अच्छा था। अब तो मैं कारखाने में ही फंसा रहूंगा।''

पंद्रह वर्ष की शांति माचिस के कारखाने में काम करती है। उसे अफसोस है कि वह कभी पढ़ नहीं पाई। वह नहीं

चाहती कि उसके बच्चे माचिस के कारखाने में या कहीं और काम करें।

कांच उद्योग, फिरोजाबाद

फिरोजाबाद के कांच उद्योग में तो हालत और भी खराब है। करीब साठ-सत्तर हज़ार बच्चे इन कारखानों में काम करते हैं। ये कारखाने दो तरह के हैं—कांच की चीज़ें बनाने वाले तथा चूड़ी बनाने वाले। सात से लेकर चौदह साल तक के बच्चे इन कारखानों में काम करते हैं।

ग्यारह साल का अशोक पहले दिन काम पर गया तो लगातार छत्तीस घंटे तक काम करता रहा। उसने कहा, "उस दिन मैं इतना थक गया था कि मुझ से गलती हो गई। मेरे बाजू में एक आदमी था, उसने मेरे मुंह पर तड़ाक से एक थप्पड़ दे मारा। थप्पड़ इतनी ज़ोर का था कि मैं उसे कभी नहीं भूल सकता।"

अशोक अब भी कांच के कारखाने में काम करता है, पर उसे रोज़ काम नहीं मिलता।

अशोक बताता है, "मैं सुबह चार बजे उठकर थोड़ा सा खा पी लेता हूं। और फिर घर से निकलकर घंटे भर में कारखाने पहुंचता हूं। काम ढूंढने के लिए एक कारखाने से दूसरे कारखाने का चक्कर लगाना पड़ता है। कभी-कभी एक ही कारखाने पर बैठा रहता हूं। 'लब्या' (सात फुट लंबा लोहे का सरिया जिसके सिरे पर पिघला कांच होता है) भट्टी से कारीगर तक ले जाने का काम मिल जाए तो ठीक है, वरना वापस लौटना पड़ता है। कभी-कभी उस दिन-खाने के लाले पड़ जाते हैं।"

और अगर काम मिल जाए तो अशोक जैसे बच्चों को खाना खाने तक की छुट्टी नहीं मिलती। अशोक बताता है, "मैं एक लब्या लेकर कांच फूंकने वाले को देकर एक कौर के लिए वापस लौटता हूं। फिर दूसरा लब्या लेकर जाता हूं।"

कांच के इन कारखानों में कांच पिघलाने की दो तरह की भट्टियां हैं जिनका तापमान 700°C से 800°C और 1700°C से 1800°C तक होता है। बच्चे इन भट्टियों से डंडों पर पिघला हुआ कांच निकालते हैं। इसके लिए उन्हें लगातार इन भट्टियों के एकदम पास बैठे रहना पड़ता है। तुम सोच सकते हो कि इतनी गर्मी से उनकी क्या हालत होती होगी। यह गर्मी उबलते पानी की गर्मी से सत्रह-अठारह गुणा अधिक होती है। जलने का डर हमेशा बना ही रहता है।

कुछ कारखानों जैसे-जनरल ट्रेडर्स ग्लास वर्कस्—में कांच काटने का काम बिजली की मशीनों से होता है। बिजली के नंगे तार कई जगह ज़मीन पर पड़े रहते हैं—किसी का पैर पड़ जाए तो बस हो गई छुट्टी! कांच के टुकड़े भी जगह-जगह बिखरे रहते हैं।

एक पत्रकार महिला जनरल ट्रेडर्स का कारखाना देखने गईं। वे एक चौड़ी गली में खड़ी थीं। वे लिखती हैं, "दो-तीन फुट चौड़ी उस गली में 10-15 लोग (जिनमें बच्चे भी शामिल थे) लब्या पर लोम लिए दौड़ रहे थे। एक मज़दूर दूसरे से टकराया और पिघला हुआ गर्म-गर्म लोम मेरे पांव के पास आ गिरा। कहीं हटने की जगह नहीं थी—सब जगह बिजली के खुले तार पड़े थे। यदि लोम मेरे पांव के पास न गिरता तो दूसरे मज़दूर की पीठ पर लगता।"

इन कारखानों में ऐसी दुर्घटनाएं होती ही रहती हैं। विजयपाल लोम ले जाने वाले एक मज़दूर से टकराया गया, उसके सर की चमड़ी जल गई। वह एक महीने तक काम पर नहीं जा सका। उसे इस अवधि के पैसे भी नहीं मिले। श्रीराम की आंख में गर्म कांच का टुकड़ा चला गया था, तब से वह अपनी आंख खोल नहीं पाता है।

कांच के कारखाने में बच्चे आमतौर पर दिन में चौदह से पंद्रह घंटे काम करते हैं। इसके बदले में उन्हें मिलते हैं केवल दस-बारह रुपए। चूड़ियों की जुड़ाई और कटाई (ड़िज़ाइन तराशने) के लिए नग के हिसाब से पैसे मिलते हैं। 312 चूड़ियां जोड़ने के लिए केवल एक रुपया। अगर चूड़ियां टूट गईं तो टूटन के पैसे भी दिन भर के वेतन से काट लिए जाते हैं। कई बार तो पूरे दिन की पगार टूटन में ही कट जाती है। कई बार इन्हें अशोक की तरह छत्तीस-छत्तीस घंटे तक काम करना पड़ता है।

कालीन उद्योग

मिर्ज़ापुर-भदोही व जम्मू काश्मीर के कालीन उद्योगों में बच्चे काम करते हैं। हालांकि यहां भी कानूनी तौर पर बच्चों का काम करना मना है। हालत यह है कि मिर्ज़ापुर-भदोही क्षेत्र (उत्तर प्रदेश) में ही करीब डेढ़ लाख बच्चे काम करते हैं। दस-बारह घंटे की कड़ी मेहनत के बाद इन्हें 8 से 15 रुपए ही मिलते हैं।

अंधेरे कमरों में बैठे ये बच्चे कालीन बनाने के लिए ऊन के छोटे-छोटे गोले बनाते हैं। इससे उनकी आंखों पर बहुत ज़ोर पड़ता है। ऊन के रेशे भी उनके फेफड़ों में घुसते हैं। इनकी मेहनत से बने कालीन विदेशों में लाखों में बिकते हैं। पर इन बच्चों की हालात पर कोई ध्यान नहीं देता।

एक बाल श्रमिक ने बताया, ''हमारी उंगलियां कट जाती हैं। हम उन पर हल्दी या मेंहदी लगाकर वापस काम पर आते हैं। हमारी उंगलियों में खून नहीं बचा है। खून निकले कहां से!''

आंकड़ों में बाल मज़दूर

अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के अनुसार 1979 में दुनिया भर में बाल श्रमिकों की संख्या 5.2 करोड़ थी। संयुक्त राष्ट्र संघ के **मानव अधिकार आयोग** के एक अनुमान के अनुसार यह संख्या 14.5 करोड़ के लगभग है।

भारत में 1981 की **जनसंख्या गणना** के अनुसार बाल श्रमिकों की संख्या 1.35 करोड़ है। जबकि 1985 के **राष्ट्रीय सैम्पल सर्वे** के अनुसार यह संख्या 1.76 करोड़ है। जबकि **गैर सरकारी अनुमान** के अनुसार देश में 10 करोड़ बालश्रमिक हैं। इस गैर सरकारी अनुमान में वे बच्चे शामिल हैं जो पारिश्रमिक सहित या बिना पारिश्रमिक के, आंशिक या पूरे समय काम करते हैं।

सरकारी आंकड़े केवल पारिश्रमिक वाले बालश्रम को ही मान्यता देते हैं। जबकि अधिकांश बच्चे, चाहे वे घर पर काम कर रहे हों या फिर खेतों पर, पैसे नहीं कमाते हैं।

भारत में कुल बाल श्रमिकों का 93 प्रतिशत ग्रामीण इलाकों में ही है। 78 प्रतिशत बालश्रमिक खेती से जुड़े हुए हैं।

माचिस, कांच और कालीन उद्योग में काम करने वाले बच्चों के स्वास्थ्य का बुरा हाल है। उनकी जान को खतरा तो हमेशा बना ही रहता है। इन बच्चों में तपेदिक और फेफड़ों की अन्य बीमारियों का होना आम बात है। लगातार काम करने से उनके शरीर का विकास नहीं हो पाता है।

एक बाल मज़दूर कहता है, ''हमारा शरीर नहीं बढ़ता, हमारी छाती नहीं बढ़ती। हमारे पैरों में ताकत नहीं रह जाती। हम कोई और काम करने के लायक नहीं रह जाते।''

ऐसे उद्योगों में बचपन से काम करने वाले मज़ूदर 30-35 वर्ष के बाद कोई अन्य काम करने योग्य नहीं रह पाते हैं। ऐसे मज़दूर अपने बच्चों को ऐसे काम में नहीं डालना चाहते हैं।

इन तीन उद्योगों के अलावा अलीगढ़ के ताला उद्योग में करीब दस हज़ार बच्चे काम करते हैं। ताला उद्योग में एक बहुत ही ज़हरीले रसायन पोटेशियम सायनाइड का उपयोग किया जाता है। पीतल के बारीक कण भी उनके फेफड़ों में घुसते हैं।

दहानु (महाराष्ट्र) के गुब्बारा उद्योग में रबर और रसायनों का उपयोग किया जाता है। जिसकी वजह से फेफड़े खराब हो जाते हैं।

मंदसौर (म.प्र.) और मर्कापुर (आंध्र प्रदेश) के नग

चमकाने का उद्योग फेफड़ों की बीमारियों को जन्म देता है।

देश के कई हिस्सों में अलग-अलग जगहों पर ऐसे उद्योगों में बच्चे श्रमिक के तौर पर लगे हुए हैं।

आखिर क्या कारण है कि इन बच्चों को काम करना पड़ता है? अन्य तमाम कारणों के अलावा गरीबी एक मुख्य कारण है। कई बार बेरोज़गार माता-पिता अपने बच्चों को ठेकेदारों के हाथों एक तरह से बेच देते हैं। फिरोजाबाद के बाहर एक गांव है—चंदवारा। वहां एक पकाई भट्टी है जिसमें दो लड़के काम करते हैं। इनकी उम्र आठ और बारह साल है। बड़े लड़के के पिता का हाथ थ्रेशर में कट गया था। उसने पकाई भट्टी के ठेकेदार से पांच सौ रुपए पेशगी ली और अपने बेटे को स्कूल से निकालकर भट्टी पर काम करने के लिए छोड़ गया। अब इस लड़के की मज़दूरी से ही पेशगी का पैसा चुकाया जाएगा। छोटे लड़के के पिता ने भी ठेकेदार से पेशगी ली है। उसे काम नहीं मिलता तो वह अपने लड़के को काम करने के लिए छोड़ गया। इन बच्चों का काम है चूड़ियों की ट्रे भट्टी पर पकाई वाले को ले जाकर देना।

कारखानों के मालिक पूछने पर कहते हैं कि इन बच्चों को सिर्फ पानी पिलाने के लिए रखा गया है। पर यदि सामने वाले को वास्तविकता मालूम होतो वे पैंतरा बदलकर अपने आपको गरीबों का मसीहा सिद्ध करने की कोशिश करते हैं।

एक कारखाना मालिक कहता है, "जब इन बच्चों को काम पर रखने के लिए गिड़गिड़ाते हैं तो हम क्या कर सकते हैं? हम उनकी मदद न करें तो ये बेचारे गरीब भूखों मर जाएंगे।"

सवाल उठता है कि यदि उन्हें गरीबों से इतनी ही हमदर्दी है तो वे बेरोज़गार वयस्क मज़दूरों को अच्छी पगार पर क्यों नहीं रखते?

वास्तव में यदि बच्चों को इन कारखानों में नहीं रखा जाए तो कारखानों का उत्पादन 25 प्रतिशत कम हो जाएगा। सी.ए. ग्लास वर्कस के मालिक का कहना है कि, ''बिना बच्चों की मेहनत के तो कांच उद्योग चल ही नहीं सकता। वे बड़ों से कहीं ज़्यादा तेजी से भाग-भाग कर काम कर सकते हैं। इसी से अधिक उत्पादन हो पाता है। ऐसा ही हाल कालीन और माचिस उद्योग में भी है। बच्चे ज़्यादा फुर्ती से काम करते हैं और उन्हें पैसे भी कम देने पड़ते हैं।

सरकार का रुख भी इस मायने में दो तरफा है। एक तरफ तो इन उद्योगों में बाल मज़दूरों को रोज़गार देने पर रोक है। दूसरी तरफ वह इन कानूनों को लागू करने में अपनी ताकत नहीं दिखाती।

कालीन उद्योग में काम करने वाले बच्चों के लिए घोषित एक पुनर्वास योजना में तीन साल में केवल डेढ़ सौ बच्चों के पुनर्वास की बात है। जबकि मिर्ज़ापुर-भदोही इलाके में डेढ़ लाख बच्चे इस उद्योग में संलग्न हैं। पुनर्वास के नाम पर इन डेढ़ सौ बच्चों को भी कालीन बनाना ही सिखाया जाएगा। इन्हें इस उद्योग से अलग तो नहीं किया जा रहा है। फिर यह कैसा पुनर्वास।

हाल ही में सरकार ने बाल श्रमिकों की समस्याओं के हल और उनकी हालत में सुधार लाने के लिए तीन सूत्री राष्ट्रीय नीति की घोषणा की है। जिसमें कानूनी कार्यवाही योजना, बाल मज़दूरों एवं उनके परिवारों पर निगरानी, एवं इन सभी योजनाओं को लागू करने के लिए जिला स्तर पर एक कमेटी बनाने की बात भी सोची जा रही है। पर होगा क्या यह समय ही बताएगा।

तुम इस बारे में क्या सोचते हो!

☐ **अंजली नरोन्हा**

कविताएं: राजेश उत्साही

छाया चित्र एवं चित्र कैरन, सागर पारकर, तथा चाइल्ड लेबर इन इंडिया से

माथापच्ची : उत्तर मार्च के

1. प्रातः और संध्या को सूर्य की किरणों का पथ वायुमंडल में अधिक लंबा होता है। इसलिए लाल रंग की किरणें धूलकणों तथा हवा के अणुओं को पार कर हमारी ओर आ जाती हैं। किंतु बैंगनी और अन्य रंग की किरणें आड़ी दिशा में बिखर जाती हैं। इसलिए सूर्य निकलते और डूबते समय लाल दिखाई पड़ता है?

5. तेज़ आवाज़ के आघात से कान के पर्दे को हानि पहुंच सकती है। अतः तेज़ आवाज़ के प्रति सुरक्षा की दृष्टि से कान पर हाथ रख लेते हैं।

7. गायों का बंटवारा इस तरह होगा

1	2	3	4
8	7	6	5
9	10	11	12
16	15	14	13
34	34	34	34

3

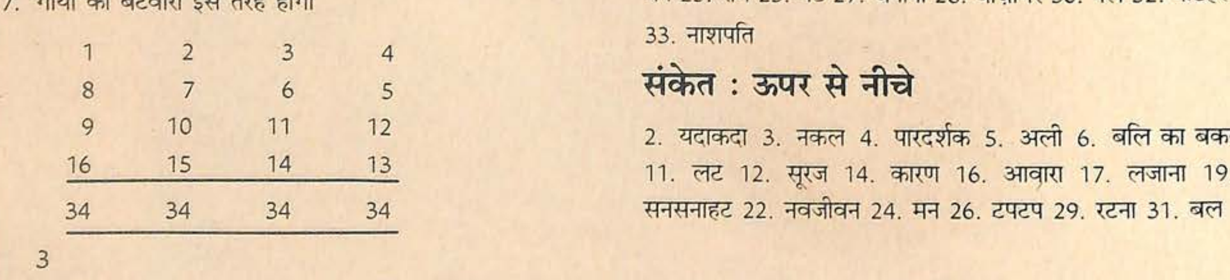

8. ऊपर आकाश में ज्यों-ज्यों ऊंचाई बढ़ती है त्यों-त्यों बाहरी हवा का दबाव घटता जाता है। अतः भीतर की हवा का आयतन बढ़ता है तो गुब्बारा फूलता है।

9. पृथ्वी ऊपर लगभग सात मील प्रति सेंकेंड के वेग से।

वर्ग पहेली—18 का हल

संकेत : बाएं से दाएं

1. आयतन 5. अनबन 7. लीक 8. लखेदना 9. बेकार 10. दाल 13. टका 15. कल, आज और कल 18. रस 20. राजा 21. जनगण मन 23. राम 25. नट 27. जनाना 28. बाज़ीगर 30. पल 32. कटहल 33. नाशपति

संकेत : ऊपर से नीचे

2. यदाकदा 3. नकल 4. पारदर्शक 5. अली 6. बलि का बकरा 11. लट 12. सूरज 14. कारण 16. आवारा 17. लजाना 19. सनसनाहट 22. नवजीवन 24. मन 26. टपटप 29. रटना 31. बल

कौआ

बड़े सवेरे घर-घर डोला
कांव-कांव कर कौआ बोला
लंबी चोंच रंग है काला
चालाकी में निपट निराला

●

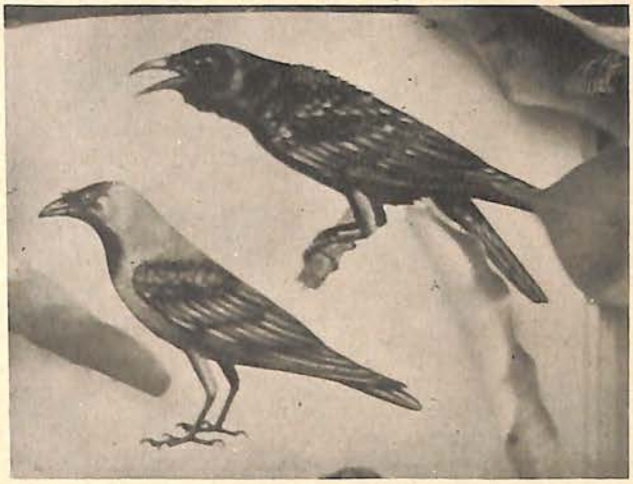

केवल मध्यप्रदेश में ही नहीं बल्कि पूरे भारत में कौआ सबसे अधिक परिचित पक्षियों में से एक है। कौए की दो प्रमुख जातियां हैं—देसी कौआ और जंगली कौआ। जंगली कौए का पूरा शरीर काला होता है। और इसकी चोंच कुछ अधिक बड़ी होती है। देसी कौए की गर्दन और छाती भूरे रंग की होती है और शेष शरीर काला होता है। जंगली कौए की तुलना में इसकी चोंच कुछ छोटी होती है।

देसी कौआ लगभग पूरी तरह मनुष्य पर निर्भर होता है और बस्तियों में ही पाया जाता है। छोटे से छोटे गांव-देहात से ले कर बंबई और कलकत्ता जैसे महानगरों तक इस पक्षी को कहीं भी देखा जा सकता है। चुस्त, चौकन्ना और चालाक होने के कारण कौए को अन्य पक्षियों पर हावी होने में देर नहीं लगती। वैसे तो यह मनुष्य को भी चकमा देने से नहीं चूकता। बसों पर रखी गठरियों में से खाने की चीज़ें उड़ाना, ग्वालों के सिर पर रखे घड़ों में से दूध पी जाना या घरों में घुस कर खाने की चीज़ों पर चोंच साफ कर देना कौए के बाएं पंख का खेल है। अनाज, फल, पका हुआ भोजन, चूहे, पक्षियों के बच्चों या मरे हुए जानवरों का मांस, सभी कुछ कौए को भोजन के रूप में चलता है।

देसी कौए का प्रजनन काल अप्रैल से जून तक होता है। नर और मादा मिल कर किसी पेड़ पर 10 फुट या इससे अधिक ऊंचाई पर तिनकों से घोंसला बनाते हैं। ऐसा लगता है कि औद्योगिक सभ्यता के बढ़ते प्रभाव से कौआ भी अछूता नहीं है। शहरों में लोहे के तार से बने घोंसले प्रायः दिखाई पड़ जाते हैं। घोंसला तिनकों से बना हो या लोहे के तार से, कौए उसे आरामदेह बनाने के लिए उसमें बाल, पर और सन के रेशे रखते हैं। घोंसला पूरा हो जाने पर मादा उसमें 4 या 5 अंडे देती है। अंडों का रंग हल्का नीला-हरा होता है और उन पर कत्थई रंग के धब्बे और धारियां होती हैं। नर और मादा दोनों मिल कर अंडों को सेते हैं और अंडों में से बच्चे निकलने पर उनके लिए भोजन जुटाते हैं। जिस पेड़ पर कौओं का घोंसला होता है उसके पास ये अन्य पक्षियों, जानवरों और यहां तक कि मनुष्य को भी नहीं आने देते। इस प्रकार कौए बहुत ही अच्छी तरह माता-पिता का कर्तव्य निभाते हैं।

जंगली कौआ प्रमुख रूप से आबादी के बाहर रहता है, लेकिन कुछ जंगली कौए शहरों और देहातों में भी पाए जाते हैं। चूहा, गिलहरी, अन्य पक्षियों के बच्चे, अनाज, सड़े-गले पदार्थ और मरे हुए जानवरों का मांस इसका प्रमुख भोजन है। इसका प्रजनन काल मार्च से मई तक होता है। घोंसले का स्थान और बनावट, अंडों की संख्या, अंडों का सेना और बच्चों की देखभाल आदि सब देसी कौए के समान ही होते हैं।

कौए के समान चालाक और चौकन्ने पक्षी को भी मात देने वाला पक्षी है कोयल। जब कौए का घोंसला बन कर पूरा हो जाता है तो नर कोयल इस घोंसले के पास जाता है। जैसे ही नर और मादा कौए उसे भगाने के लिए उसका पीछा करने लगते हैं मादा कोयल जल्दी से कौओं के घोंसले में अंडे दे देती है। कौए इन्हें अपने ही अंडे समझ कर सेते हैं और उनसे निकलने वाले बच्चों को पालपोस कर बड़ा करते हैं।

मनुष्य के बहुत निकट रहने के कारण कौए और मनुष्य में काफी गहरा संबंध बना है। कविता और किस्से कहानियों में इस पक्षी को अन्य पक्षियों की तुलना में अधिक स्थान मिला है। कौए के बारे में कई गलतफहमियां भी प्रचलित हैं। सबसे अधिक प्रचलित भ्रम यह है कि कौआ काना होता है और एक समय में एक ही आंख से देख सकता है। पर ऐसा नहीं है।

मनुष्य के लिए कौआ हानिकारक कम, लाभदायक अधिक है। वह विभिन्न प्रकार के हानिकारक जंतुओं जैसे चूहे, कीड़े-मकोड़े, आदि को नष्ट करता है और मरे हुए जानवरों को खा कर गंदगी का सफाया करता है।

कविता : रुद्रदत्त मिश्र

□ अरविंद गुप्ते

माथापच्ची

(1)

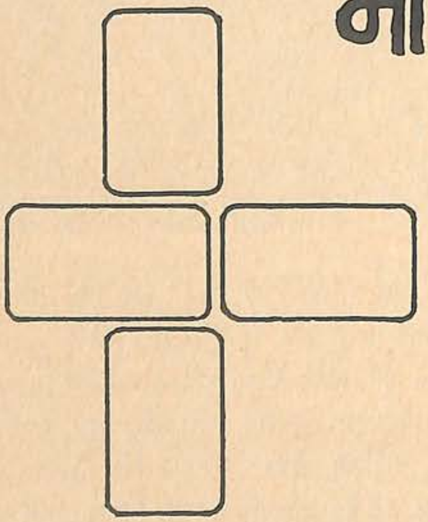

चार ताश के पत्तों को चित्रानुसार रखो। अब केवल एक पत्ते को खिसकाकर फिर से इस तरह लगाओ कि एक वर्ग बन जाए।

(2)

हमारे पास हाइड्रोजन पैराक्साइड के घोल के दो प्रकार हैं। एक 30 प्रतिशत सांद्रता का और दूसरा 3 प्रतिशत सांद्रता का। दोनों को किस अनुपात में मिलाया जाए कि 12 प्रतिशत सांद्रता का घोल बन जाए?

(3)

एक रंग के सात लोटे (क, ख, ग, घ, च, छ, ज) एक लाइन में रखे हैं। उनमें से एक चांदी का बना है। अब यदि हम 'क' से गिनती शुरू करें तो 1000 तक गिनने पर उस लोटे तक पहुंचेंगे। क्या बिना गिनती किए चांदी का लोटा पहचाना जा सकता है?

(4)

इस चित्र में 1 से 67 तक के अंकों को रेखा खींच कर मिलाओ और देखो तो भला क्या बनता है।

(5)

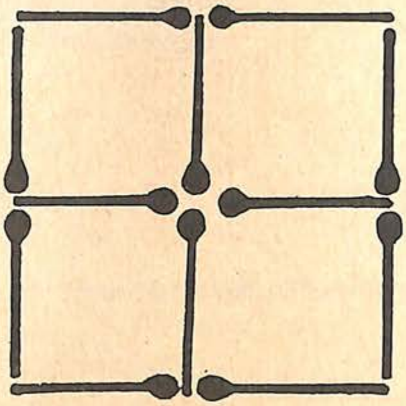

बारह माचिस की तीलियों को चित्रानुसार जमाओ अब केवल दो तीलियों को इस प्रकार हटाओ कि केवल दो वर्ग रह जाएं।

(6)

एक खेत तीस टुकड़ों में बंटा है। प्रत्येक की लंबाई 16 मीटर और चौड़ाई 2.5 मीटर है। कुआं खेत के एक कोने से 14 मीटर दूर है। किसान हर टुकड़े को चारों तरफ से सींचता है। एक बार में कुएं से वह जितना पानी लाता है, वह एक टुकड़े की सिंचाई के लिए काफी होता है। पूरे खेत की सिंचाई के लिए उसे कितना चलना पड़ेगा? पथ को कुएं से शुरू मानें।

(7)

एक कमरे की दीवारों की पुताई एक मज़दूर दो दिन में कर सकता है। तो दो गुने ऊंचे और दो गुने चौड़े कमरे की पुताई वह मज़दूर कितने दिन में कर पाएगा?

(8)

इन पांच त्रिभुजों को इस प्रकार जमाओ कि एक वर्गाकार आकृति बन जाए।

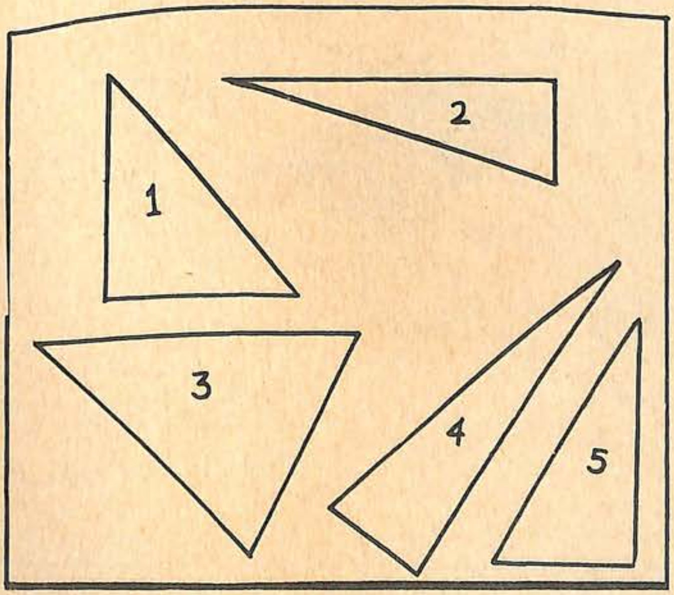

वर्ग पहेली—19

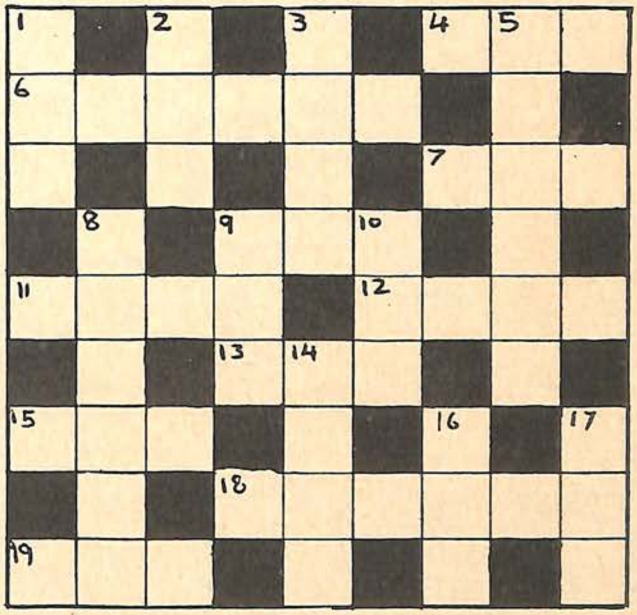

संकेत : बाएं से दाएं

4. ओस जलने में पानी से भरे नयन (3)
6. कक्का जी कहिन की आधार पुस्तक (3,3)
7. सहसा उलट हिम्मत (3)
9. नुकसान (3)
11. कणाद वानर यक्ष दशानन सबका सिर कसरत के लिए (4)
12. ला नाहक गड़बड़ी से रुक रुक कर बोलना (4)
13. सेब रस के अंदर साल (3)
15. आंख में अंजन का पानी (3)
18. रंग में भंग (2,4)
19. भार (3)

संकेत : ऊपर से नीचे

1. प्रथमाक्षर इमानदार बहुत (3)
2. जानदार (3)
3. त्रा त्रा हि हि का तांडव (2,2)
5. जिनकी जन्म शताब्दि है (4,2)
8. वायुयान (3,3)
9. अब बीच में दस का सिर, नम्रता (3)
10. नहस के पहले का शब्द (3)
14. मना रजा का उल्टा पुल्टा (4)
16. महिला का पर्यायवाची (3)
17. धर्मशाला (3)

चित्र पहेली — राजेश गुजर, महेश्वर

.... एक कांटों भरा रास्ता।

स्कूली इम्तहान तो बंद ही कर देना चाहिए। लेकिन जब तक ऐसा करना संभव नहीं होता, तब तक इन इम्तहानों को न्यायपूर्ण तो बनाना ही होगा। कठिन प्रश्नों का स्तर जीवन के अन्य पहलुओं से जुड़ी कठिनाईयों से ऊपर होने का कोई मतलब नहीं है। परीक्षा को अधिक कठिन बनाना एक तरह से एक बीमारी बन जाती है, बच्चों को फंसाने की। जैसे बच्चों के साथ जंग छेड़ना ही उद्देश्य हो।

लगातार टेस्ट

मौखिक टेस्ट व लिखित गृहकार्य लगातार एक के बाद लिए और दिए जाते हैं। अधिकांश बच्चों के लिए यह एक लगातार तनाव और चिंता करने का विषय बन जाता है। और इस तनाव और चिंता को बढ़ाने में पालकों का भी हाथ रहता है, क्योंकि इन टेस्टों के नतीजों पर ही पालक बच्चों को इनाम या सज़ा देते हैं।

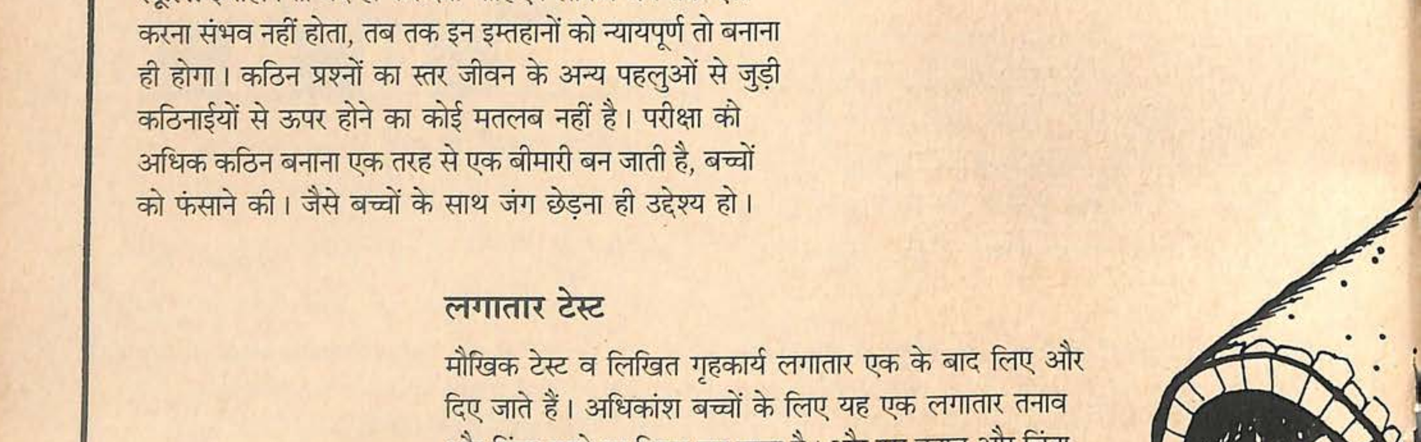

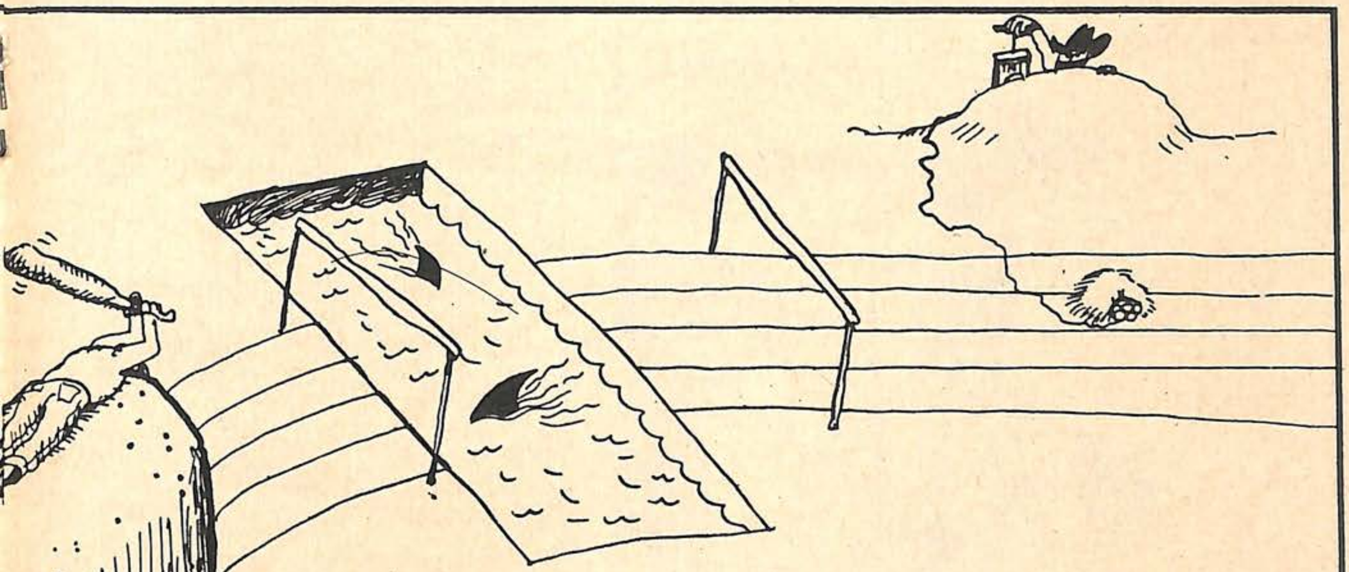

साल के आखिर में सिलेक्शन

ज्ञान-विज्ञान को सालाना राशन की तरह बांटने का तरीका इज़ाद कर दिया गया है। हर स्तर पर निगलने के लिए इस राशन का एक नियमित डोज़ तय कर दिया गया है। यह सोचे बिना कि हरेक एक सी गति से नहीं सीखता है....!

केवल वे ही जिन्होंने ज्ञान के इस सालाना राशन को ठीक से अपने में समोया है, अगली सीढ़ी पर चढ़ सकते हैं...!

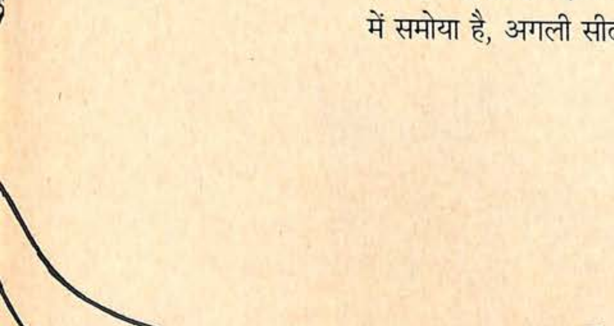

बाकी जो बचे.... उन्हें दुबारा **इम्तहान पर इम्तहान** देना होगा, जब तक वे स्कूल में रहेंगे!

और आखिरकार जब स्कूल छोड़ने की उम्र आती है तो जो लगातार नाकामयाब रहे हैं या पढ़ाई में पिछड़ गए हैं, उन पर तो **रिजेक्ट** का ठप्पा लग जाता है। और यह ठप्पा उनका पूरा भविष्य तय कर देता है।

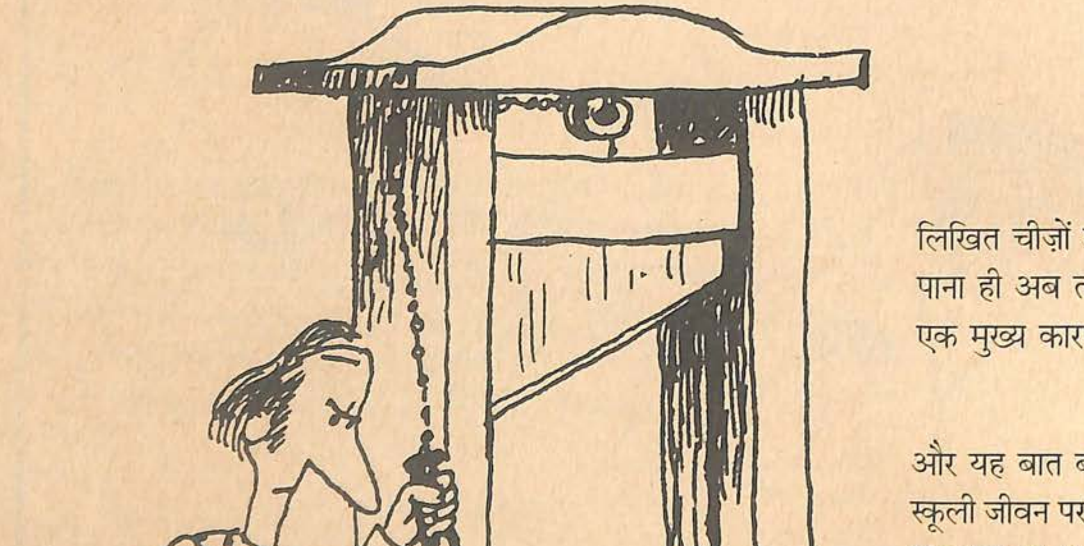

लिखित चीज़ों को ठीक से न पढ़ पाना ही अब तक असफलता का एक मुख्य कारण सामने आया है।

और यह बात बच्चे के तमाम स्कूली जीवन पर असर डालती है। सफलता या असफलता का निर्णय भी काफी हद तक केवल इसी चीज़ पर निर्भर है, न कि बच्चे की बुद्धि व समझ-बूझ पर!

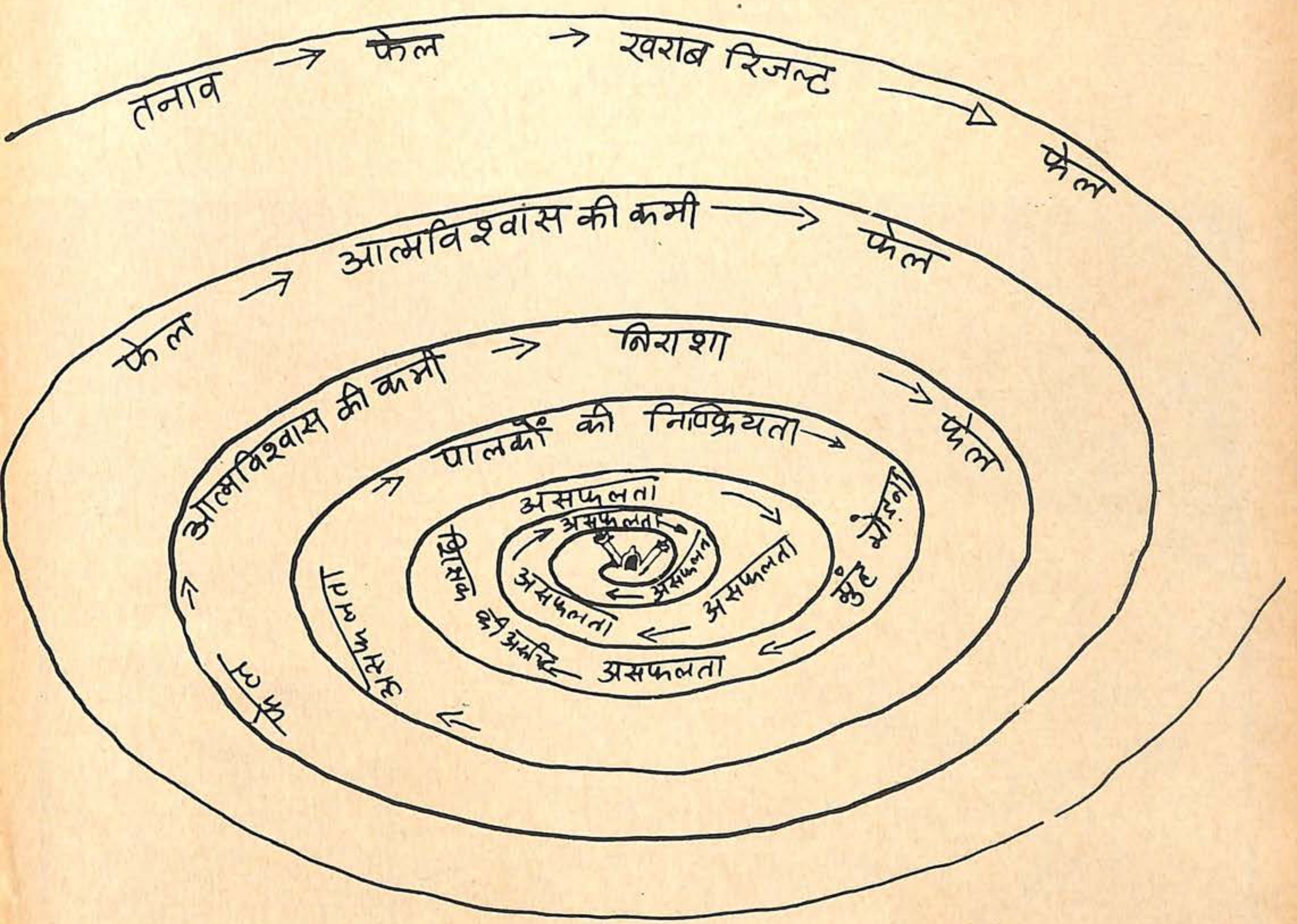

कक्षा में पढ़ाने वाले शिक्षकों पर किए गए एक सर्वे से पता चला कि छटवीं कक्षा में पहुंचते ही बच्चों की छंटाई शुरू हो जाती है। जो पढ़ाई में (लिखित शब्दों को पढ़ने में) अच्छे होते हैं, उन्हें घर पर पढ़ने व प्रोजेक्ट पर काम करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। यानि ऐसे बच्चों को स्कूली पुस्तक के अलावा कुछ और भी पढ़ने का हौसला दिया जाता है। ये 'अच्छे' बच्चे कहलाते हैं, जो इम्तहान ठीक-ठीक पास करते हैं। इससे यह परिभाषित होता है कि एक स्वतंत्र छात्रा एक अच्छी छात्रा है, जो घर पर अकेले काम कर सकती है। लेकिन ऐसा समूह पूरी क्लास का लगभग एक चौथाई ही है। बाकी सभी केवल ठीक से पढ़ पाने की कशमकश में ही फंसे रहते हैं। और आमतौर पर छटवीं कक्षा के शिक्षक इस तथ्य से वाकिफ भी नहीं रहते हैं। वे केवल यही कहते हैं... 'ये बच्चे ठीक से काम नहीं करते हैं।'

विचित्र विषयों की दुनिया

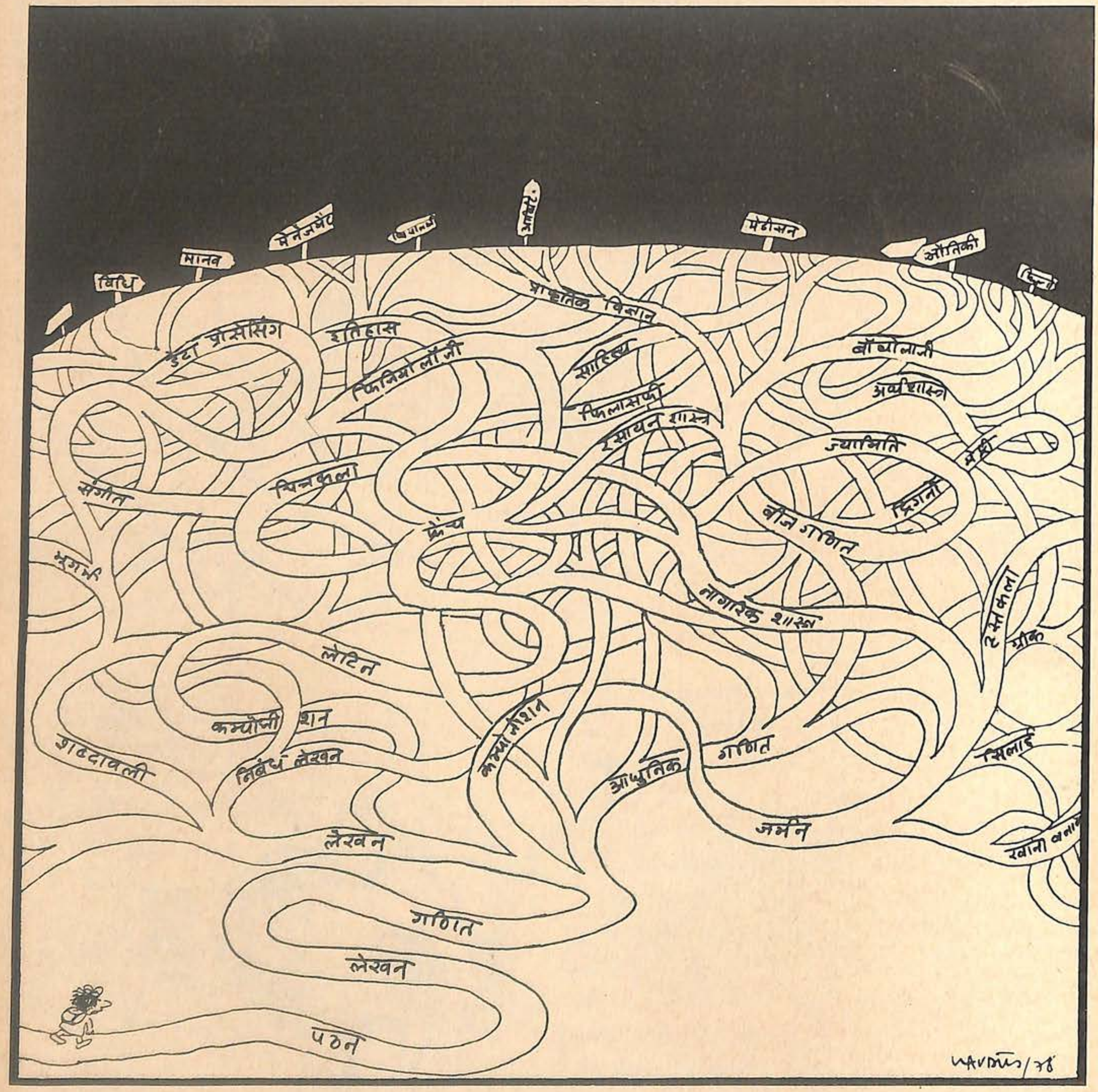

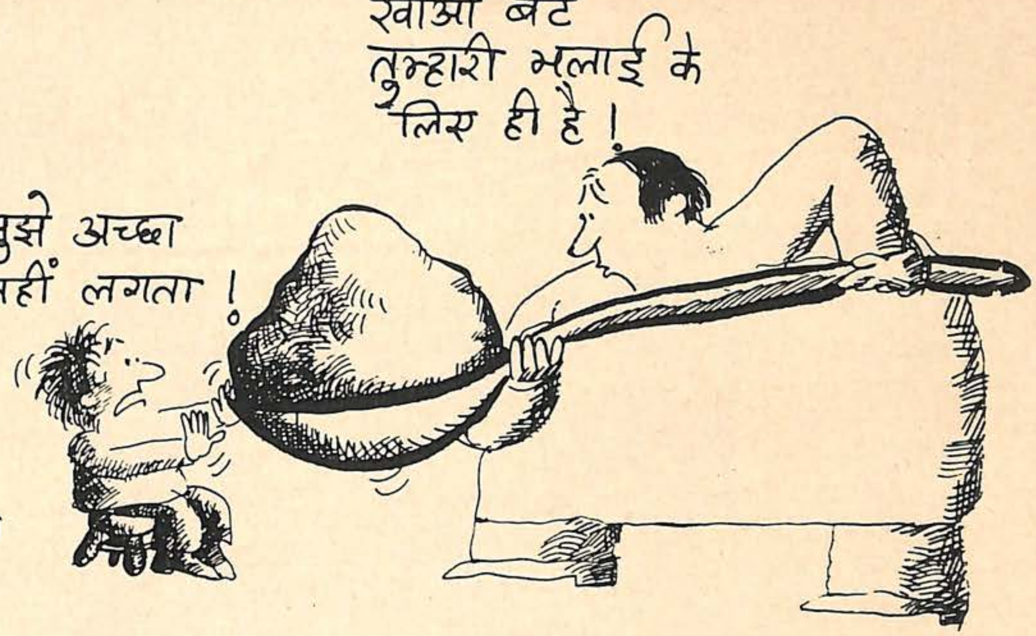

.... जो बच्चों की समझ से बाहर भी है और तुरंत उसका कोई फायदा भी नहीं दिखता!

बच्चे स्वयं—जो कार्य उनसे करवाया जाता है—उसका फायदा नहीं समझ पाते हैं।

उनसे लगातार जो कार्य करवाए जाते हैं बच्चे या तो इसलिए करते रहते हैं कि आखिर 'स्कूल में ऐसे ही होता है' या फिर सज़ा मिलने के डर से।

जब बच्चे कभी कभी अपना विरोध कुछ इस तरह व्यक्त करने की हिम्मत करते है—

.... 'व्याकरण बेकार है'....
.... 'गणित से क्या फायदा?'....

तो वयस्क, चाहे वे पालक हों चाहे शिक्षक, इस जवाब के अलावा कुछ नहीं कह पाते हैं कि—

.... 'आगे तुम्हें इसकी उपयोगिता समझ में आएगी'....
.... 'जब तुम बड़े हो जाओगे तो अपने आप समझ जाओगे'....

.... असलियत से कटे हुए

स्कूल के बाहर होने वाली घटनाओं सें कटे हुए	: इन घटनाओं को एक विषय के 'प्रोग्राम' में बांधना मुश्किल है, चूंकि वे जीवन की विविधताओं से भरी हुई हैं।
रोज़मर्रा की असलियत से कटे हुए	: बच्चों की दुनिया, जिसके वास्तविक अनुभवों में बच्चे तनाव महसूस नहीं करते हैं।
कामकाज से उभरी असलियत से कटे हुए	: जो शिक्षा को मायने दे पाती है। ऐसा कभी देखने को नहीं मिलता है कि गणित का कोई संबंध असली समस्याओं से हैं! और इसी तरह पठन या लिखाई का!

ग्रहण

मैंने एक कांच को मोमबत्ती के धुएं से काला करके रखा था, ताकि मैं और मेरी क्लास के बच्चे ग्रहण को आराम से कक्षा में से देख लें।

मेरें कुछ साथी शिक्षक स्कूल पहुंचे और व्यंग्य में पूछा कि, 'कांच को किसने काला किया?' फिर सीधे नंगी आंख से ग्रहण देखने के खतरों पर कुछ उखड़ी-सी बातचीत हुई। एक साथी शिक्षक ने कहा, 'मुझे कोई डर नहीं है क्योंकि मेरी कक्षा सूर्य के सामने नहीं है।' वह यह बिलकुल नहीं सोच सकता था कि सुबह 8:30 बजे एक शिक्षक कक्षा के बदले कहीं और भी हो सकता है, चाहे वहां ग्रहण ही क्यों न लगा हो।

ठीक 8:30 पर घंटी बजी (घंटी को क्या मालूम ग्रहण के बारे में, वह तो अखबार नहीं पढ़ती है) और बच्चे, भेड़-बकरियों की तरह अपनी कक्षाओं में घुसने लगे। ठीक उसी समय चंद्रमा ने सूर्य को ढकना शुरू किया।

यह तो एक विदेशी स्कूल की कहानी है। अपने देश में तो शिक्षक स्वयं अपने बच्चों को ग्रहण देखने से मना करते हैं, यह कहकर कि इससे हानि होती है।

रूपांतरण : विनोद रायना
(अगले अंक में जारी)

आफत बुढ़िया की

एक थी बुढ़िया। सर्दी के दिन थे। बुढ़िया बाहर बैठी धूप सेंक रही थी। बैठे-बैठे उसे नींद आ गई। आंखें तो हो गई बंद और मुंह रह गया खुला का खुला।

इतने में एक मक्खी उड़ती हुई आई।

भननन........... भन्नन........... नन........... बुढ़िया का खुला मुंह देख उस में घुस गई। बुढ़िया ने हड़बड़ा कर आंखें खोली और मुंह गप्प से बंद किया। बेचारी मक्खी चली गई पेट के अंदर।

धीरे-धीरे बुढ़िया की आंखें फिर मुंदने लगीं तभी पेट से उसे आवाज़ सुनाई पड़ी—

भन्नन........... भन्नन........... भन्नन..........!

अब बुढ़िया ने जाना कि वह मक्खी को निगल गई है। वह घबरा गई।

सोचने लगी - हाय ये भन भन
अब मैं क्या करूं
अब मैं क्या करूं
अगर मैं मर गई तो!

इतने में आई एक मकड़ी, कर्क........... कर्क........... कर्क..........!

उसे देख बुढ़िया की आंखें चमकीं। मकड़ी इस मक्खी को मार देगी। ऐसा सोचकर बुढ़िया लपक के मकड़ी को निगल गई।

थोड़ी देर में भन-भन बंद हो गई। बुढ़िया खुशी-खुशी सोने की तैयारी करने लगी।

तभी पेट से आवाज़ आई-कर्क..... कर्क..... कर्क......! बुढ़िया तो और भी घबरा गई और सोचने लगी—

हाय, भन भन
भन भन से कर्क कर्क
अब मैं क्या करूं
अब मैं क्या करूं
अगर मैं मर गई तो!

इतने में फुर्र से उड़ के आई एक चिड़िया—
चूं..... चूं..... चूं चूं........ चूं चूं.....!

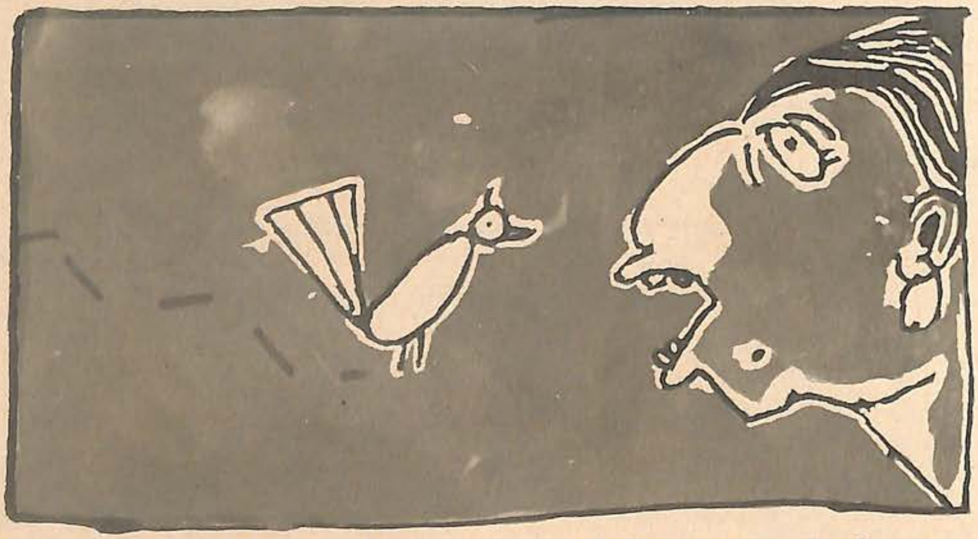

चिड़िया को देख बुढ़िया को फिर रास्ता सूझा, चिड़िया इस मकड़ी को मार देगी। यह सोचकर बुढ़िया झटपट चिड़िया को निगल गई। धीरे-धीरे कर्क कर्क भी बंद हो गई।

बुढ़िया ने शांति से फिर आंखें मींच ली और धूप का आनंद लेने लगी कि यह लो—

पेट से आवाज़ आने लगी, चूं चूं....... चूं चूं........!

हाय रे, यह नई मुसीबत आ गई, बुढ़िया सोचने लगी।

हाय, भन भन
और भन भन से कर्क कर्क
और कर्क कर्क से चूं चूं
अब मैं क्या करूं
अब मैं क्या करूं
कहीं, मैं मर गई तो!

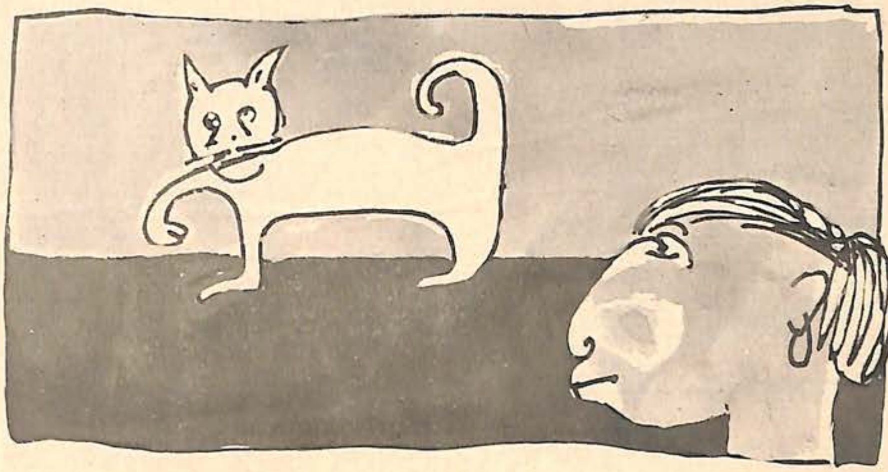

इतने में आई एक बिल्ली, म्याऊं....... म्याऊं ....!

बिल्ली को देख बुढ़िया को फिर बात बनती नजर आई, बिल्ली इस चिड़िया को खत्म कर देगी। ऐसा सोच कर बुढ़िया एक क्षण में बिल्ली को निगल गई।

अब जाकर कहीं चूं चूं बंद हुई और बुढ़िया ने राहत की सांस ली।

पर वाह भई वाह, अब पेट में से आवाज़ आई, म्याऊं म्याऊं....... ।

अब तो बुढ़िया डर के मारे बेहाल होने लगी—

हाय - भन भन
और भन भन से कर्क कर्क
और कर्क कर्क से चूं चूं
और चूं चूं से म्याऊं म्याऊं
अब मैं क्या करूं
अब मैं क्या करूं
अगर मैं मर गई तो!

इतने में रंभाती हुई आई एक गाय-बां....... बां .... ! गाय बिल्ली को मार देगी, गाय बिल्ली को मार देगी, कहती हुई बुढ़िया अब की बार गाय को ही निगल गई।

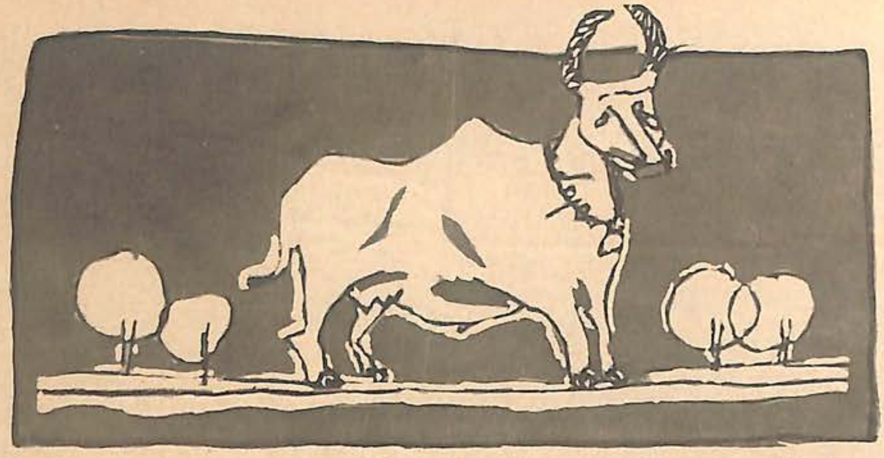

म्याऊं........ म्याऊं....... शांत हुई। बुढ़िया की जान में जान आई।

पर, थोड़ी देर में पेट से आवाज़ आने लगी, बां....... बां........! बुढ़िया तो पांव पटकने लगी।

हाय - भन भन
भन भन से से कर्क कर्क
कर्क कर्क से चूं चूं
चूं चूं से म्याऊं म्याऊं
म्याऊं म्याऊं से बां बां
अब मैं क्या करूं
अब मैं क्या करूं, अगर मैं मर गई तो!

इतने में आया एक घोड़ा।

बुढ़िया ने आव देखा न ताव और घोड़े को निगल गई।

बां....... बां....... तो रुक गई पर हिन....... हिन....... सुनने वाला कोई नहीं था।

इस बार बुढ़िया वाकई मर गई।

(एक अंग्रेज़ी कविता से स्मिता अग्रवाल द्वारा रूपांतरित।)

सभी चित्र : अक्षत चराटे

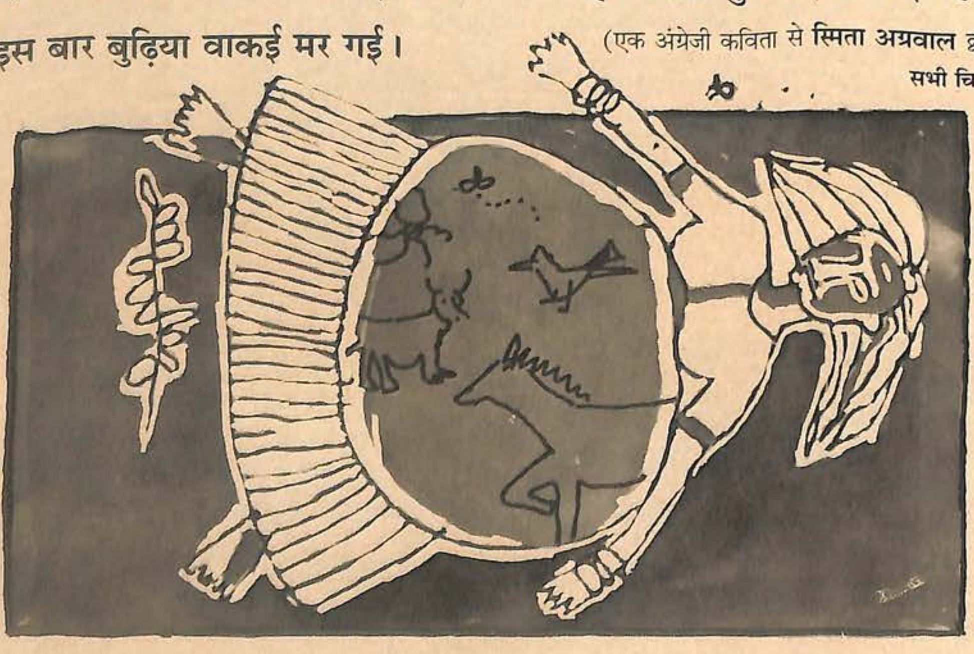

क्रोमेटोग्राफी :

रंगों को करो अलग-अलग

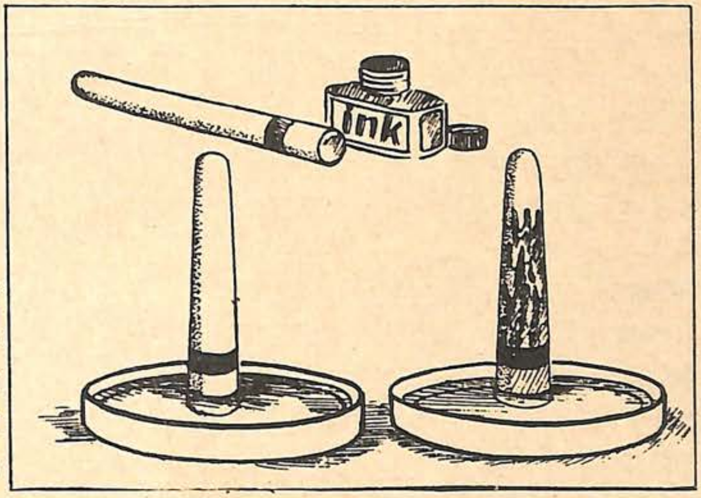

कुछ काली, लाल, नीली स्याही की बूंदों को आपस में मिला लो। अब इस मिश्रित स्याही की कुछ बूंदें चाक के मोटे छोर से पांच मिलीमीटर दूरी पर लगाओ। चाक को धूप में सुखा लो। सूखने के बाद उसे पानी से भरे ढक्कन में खड़ा करो। स्याही का निशान पानी के स्तर से थोड़ा ऊपर रखना।

अब देखो क्या होता है। चाक धीरे-धीरे पानी को सोखना शुरू कर देगी। थोड़ी देर में चाक पूरी गीली हो जाएगी। उसके अलग-अलग स्तरों पर तुम्हें अलग-अलग रंग दिखाई देंगे।

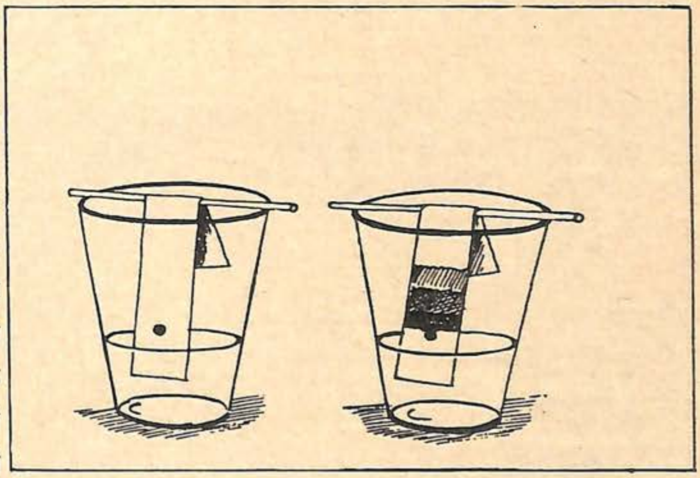

इसे एक और तरह से कर सकते हो। एक सोख्ता कागज़ की पट्टी लो। उसके एक छोर पर एक सेंटीमीटर दूरी पर मिश्रित स्याही की एक बूंद डालो। पट्टी को मोड़ो और उसे चित्रानुसार एक सींक पर गिलास में लटका दो। हां, पहले गिलास में थोड़ा सा पानी भर लेना। यह भी ध्यान रहे कि स्याही वाला छोर पानी में डूबा रहे, पर स्याही की बूंद पानी से ऊपर रहे। थोड़ी देर में अलग-अलग रंग की स्याही पट्टी पर अलग-अलग स्तरों पर छिटक जाएगी।

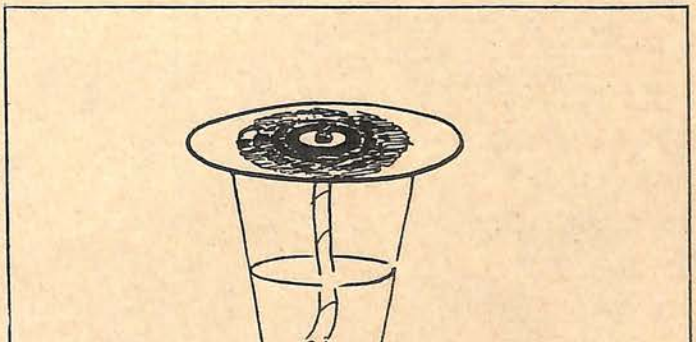

एक और तरीका है। एक गोल सोख्ता कागज़ लो। उसके बीचोबीच एक छोटा छेद करों। छेद से कुछ दूरी पर एक मिश्रित स्याही से एक गोला बनाओ। रूई की एक बत्ती को सोख्ता कागज़ के छेद में फंसा दो। कागज़ को पानी से भरे एक गिलास पर इस तरह रखो कि बत्ती पानी में डूॅबी रहे। थोड़ी ही देर में अलग-अलग रंग की स्याही अलग-अलग गोलों में छिटक जाएगी।

जिस विधि से तुमने स्याही के रंगों को अलग-अलग किया उसें क्रोमेटोग्राफी कहते हैं।

□ अरविंद गुप्ता
सभी चित्र □ अरविंद देशपांडे

छोकरा : एक

हाथों में
पीठ पर
या फिर गले में
जनेऊ की भांति
लटकाए रहता है छोकरा
झाड़ू बांधकर रस्सी में

मिलता है
रेलगाड़ी के डिब्बे में
अक्सर
बदन पर होती है एक
फटी, मैली-कुचैली
बनियान/कमीज़ और निकर
या निकर जैसी कोई चीज़

घुस आता है
पैरों में
बिना कुछ कहे,
करता है सफाई झुककर
पैर
आगे-पीछे
ऊपर-नीचे
हटते हैं/सरकते हैं/उठते हैं
खिंचते हैं

छोकरा
साफ करता है
बीड़ी सिगरेट के टोंटे
मूंगफली के छिलके
छिलके संतरे के
छिलके फलों के
इस उम्र में
जब साफ करने चाहिए
उसे अपनी स्लेट, अपनी कलम
अपना घर, अपना स्कूल
भविष्य की राह में
आने वाले शूल

फैल जाती है
उसकी हथेली
दो सेकंड ठहरता है वह
हर एक के सामने
आदमी के सामने
होती है घड़ी अपने में
इंसान की उपस्थिति का
अहसास कराने की
जो सोचते हैं वे
केवल सोचते रहते हैं
अपने में इंसानियत की बात
छोकरा मांगता नहीं है भीख
बढ़ जाता है आगे
फैलाए अपनी हथेली
इस उम्र में
जब फैलनी चाहिए
मास्साब के सामने
पाने के लिए सज़ा
पाने के लिए इनाम

छोकरा
हाथों में
पीठ पर
या फिर गले में
जनेऊ की भांति
लटकाए रहता है झाड़ू
बांधकर रस्सी में •

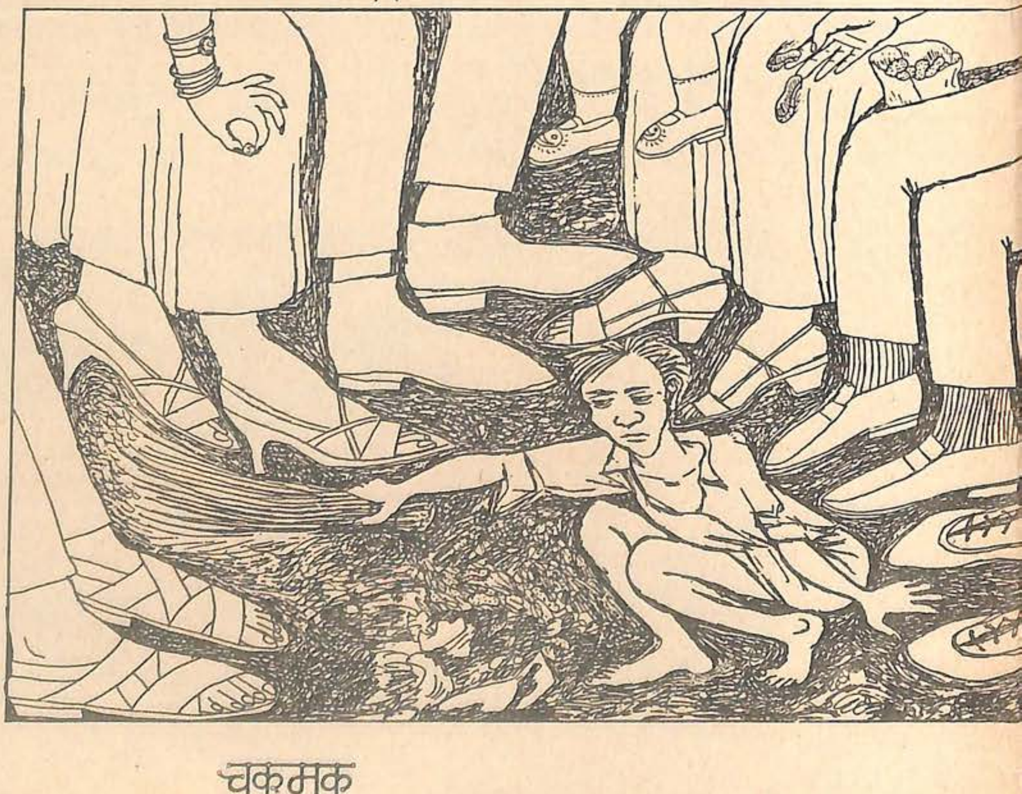

छोकरा : दो

छोकरा
लिए रहता है
टुकड़े एसबेस्टस की चादर के
दो छोटे-छोटे टुकड़े

फंसाकर
उंगलियों के बीच
बजाता है छोकरा
गाता है गीत
इकट्ठा करता है मजमा

मजमा
सुनता है
छोकरे के बचपन से
जवानी के गीत
और उसकी आने वाली
जवानी को
बना देता है बुढ़ापा

छोकरा गाता है रखकर कलेजा
गले में
दो सांप लहराते हैं
उसके गले में
छोकरे की आंख में
होता है
दो रोटियों का आकाश
एक कप चाय का
गहरा समुद्र

छोकरा
लिए रहता है
टुकड़े एसबेस्टस की चादर के
दो छोटे-छोटे टुकड़े

●

सभी चित्र : कैरन

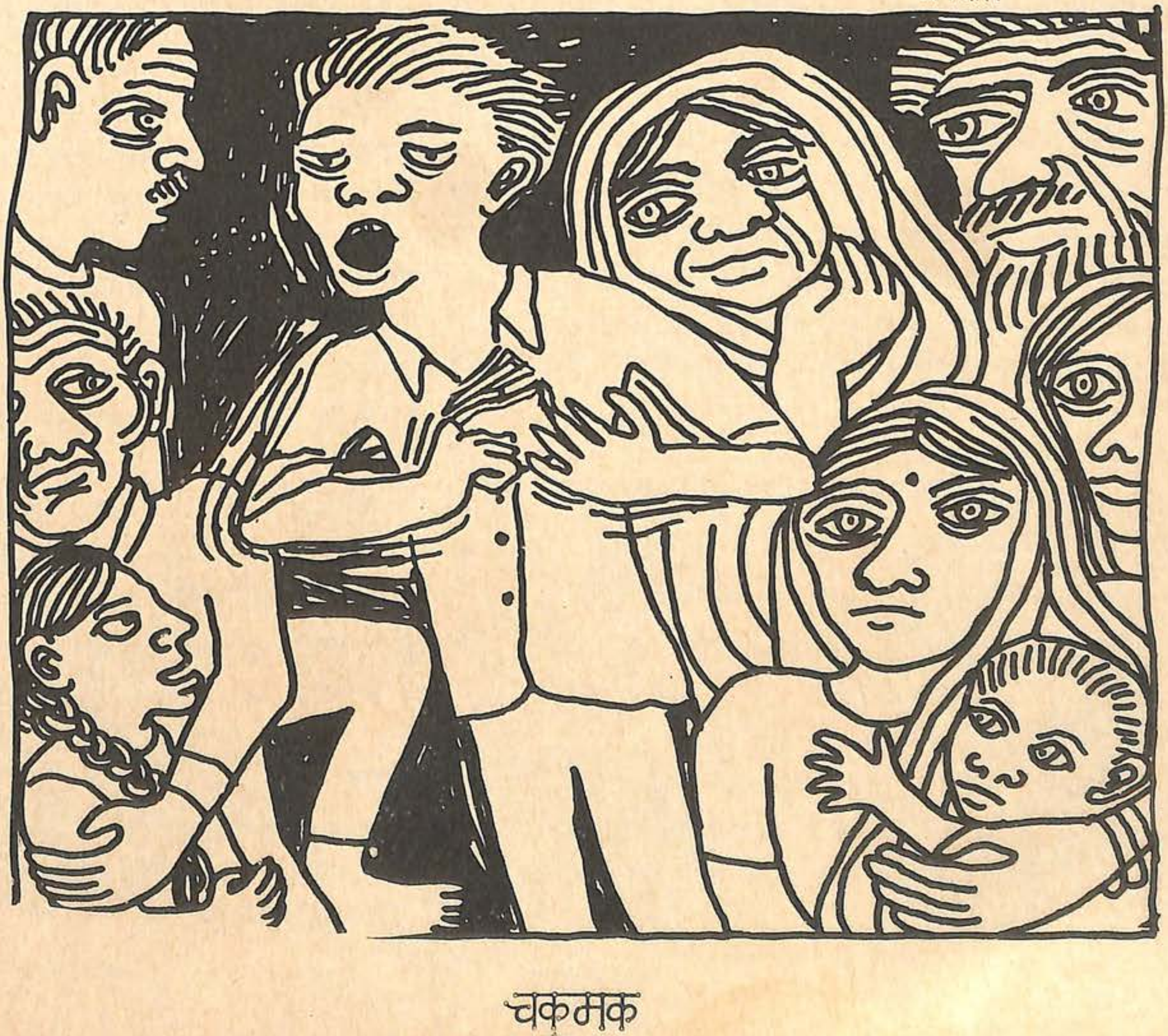

धारावाहिक-3

रेडियम महिला
मारी क्यूरी

अब तक तुमने पढ़ा....

मान्या जब पैदा हुई तो पोलैण्ड पराधीन था। और एक पराधीन राज्य में तरह-तरह की बंदिशें होती हैं। इन्हीं बंदिशों के बीच मान्या का बचपन बीता। दस वर्ष की मान्या को जीवन की कटु-कठोर विपदाओं से छुटकारा पाने का एक ही तरीका दिखा - जी जान से पढ़ाई में जुट जाना। गुलाम पोलैण्ड में उन दिनों पढ़ना-लिखना आसान काम नही था। लड़कियों को विश्वविद्यालय में पढ़ने की इजाज़त नहीं थी। मान्या को बापू ने एक सरकारी स्कूल में डाल दिया। मान्या और ब्रोन्या ने अपना खर्च निकालने के लिए बच्चों को पढ़ाना शुरू किया। फिर ब्रोन्या चली गई पैरिस। मान्या गांव में बच्चों को पढ़ाने लगी। अब आगे...........

एक दिन ब्रोन्या की चिट्ठी आई।

जल्दी-जल्दी लिखी कुछ सतरें थीं :

"फौरन चली आ। मैं शादी कर रही हूं। हमारे यहां तू बेखटके रह सकेगी। किराये के रुपयों का किसी तरह इंतजाम कर ले और गाड़ी पर बैठकर पेरिस भाग आ।"

ब्रोन्या के ब्याह की बात घर वालों को पहले से मालूम थी। एक जाने-माने क्रान्तिकारी थे ब्रोन्या के होने वाले पति। पेरिस में डाक्टरी पास करने की तैयारी में आज-कल लगे हुए थे। देश-भक्ति के जुर्म में सरकार ने उन्हें साइबेरिया भेज दिया था। साइबेरिया समझते हो न? कालापानी। लेकिन वहां से भागकर वह फिर पेरिस आ पहुंचे थे।

बड़ी उधेड़-बुन में है मान्या। क्या करे, क्या न करे।

आखिर मान्या एक दिन पेरिस जाने वाली गाड़ी पर जा बैठी। मन ही मन वह कह रही थी, "एक-एक कौड़ी समझ-बूझ कर खर्च करनी होगी, मान्या!"

रेल के तीसरे दर्जे में मान्या अपने टूटे बक्से पर बैठी है। यहां बैठी वह ऐसा महसूस कर रही है जैसे गद्दीदार कुर्सी पर बैठी हो। साथ में लोटा-थाली वगैरा भी हैं, छोटी-मोटी गृहस्थी का सरंजाम।

बापू भी उसे स्टेशन तक छोड़ने आए थे। भर्राये गले से मान्या ने कहा, "घबराना नहीं, बापू! मैंने इम्तहान खत्म किए नहीं कि फौरन चली आऊंगी।"

बूढ़े बापू का गला भर आया। मान्या को छाती से लगाकर रुंधी आवाज में बोले, "रानी बिटिया! जल्दी घर लौट आना। इम्तहान का नतीजा अच्छा होना चाहिए। समझी बेटी! बड़ी मेहनत करनी पड़ेगी, हां!"

छिक्... छिक्... छुक्... छुक्...!

गाड़ी पेरिस की ओर जा रही है। सारबान विश्वविद्यालय! नया जीवन! दूर तक फैला हुआ भविष्य...!

विश्वविद्यालय की दीवार पर एक नोटिस लगा था—

"सारबान के विज्ञान विभाग में नवंबर 1901 से पढ़ाई शुरू होगी!"

इस नोटिस को मान्या एकटक देखती रह जाती। उसका मन न भरता।

सारबान विश्वविद्यालय! पेरिस! मान्या का सपना साकार हुआ। विश्वविद्यालय के रजिस्टर में फ्रांसीसी ढंग पर उसका नाम लिखा गया : "मारी स्क्लोडोव्स्का।"

सारबान विश्वविद्यालय था ब्रोन्या के घर से बहुत दूर। ब्रोन्या का घर मज़दूरों के एक मोहल्ले में था। मारी के बहनोई काशिमिर वहीं डाक्टरी करते थे। ब्रोन्या भी गांव की औरतों की दवा-दारू करती।

मान्या को पाकर भला कौन खुश न होता? ब्रोन्या और काशिमिर की खुशी का ठिकाना न था। और यही बात मारी के लिए भारी मुसीबत की चीज़ बन गई।

कैसी मुसीबत?

काशिमिर मारी को प्रसन्न रखने में कुछ भी न उठा रखना चाहते। नतीजा यह कि मारी की पढ़ाई डांवा-डोल हो गई। ब्रोन्या के घर शाम को अपने देश से निर्वासित पोलिश स्त्री-पुरुषों की बैठकें जमतीं। इन बैठकों में मारी की बराबर पुकार होती रहती।

एक बात और थी। दोनों बहनों में बहुत दिन बाद मुलाकात हुई थी न! सो ब्रोन्या मान्या से बातें करती न अघाती। जब देखो तब बातें। बातें खत्म ही न होतीं। मौका पाते ही ब्रोन्या कोई न कोई बात छेड़ देती। अब बातें हो रही हैं, तो उनका कोई अंत ही नहीं।

मारी पहले से ही बहुत पिछड़ी हुई थी। पोलैण्ड में वैज्ञानिक प्रयोग के साधन भला कहां से मिलते? फिर घर से रोज इतनी दूर आना-जाना। पैसा भी खर्च होता, वक्त भी। मारी ने सोचा। सोच-विचार कर फैसला किया। कालेज के पास ही किराये पर एक कमरा ठीक किया। बड़ी मेहनत करनी पड़ी उसे काशिमिर और ब्रोन्या को यह समझाने में कि उसका कालेज के पास रहना ज़रूरी है। ब्रोन्या ने पहले तो ना-नू की। लेकिन हारकर मारी की बात उसे माननी ही पड़ी।

पेरिस में था क्यार्ते ल्यातां नाम का एक मोहल्ला। इस मोहल्ले में रहा करते थे पेरिस के गरीब कलाकार और विद्यार्थी। वहीं था एक मकान। उस मकान की छठी मंजिल पर थी एक छोटी-सी बरसाती—बिना हवा की, बिना रोशनी की, सीलन भरी बरसाती। यहीं रहने लगी मान्या। यहां कोई भी उसकी तपस्या में विघ्न नहीं डाल सकता था। फिर, मारी इतने लजीले स्वभाव की थी कि किसी से सहज मिलती-जुलती भी न थी। कालेज में, काम के दौरान में जिनके साथ उसका सम्पर्क होता, उनके साथ कालेज से बाहर उसका कोई सम्पर्क न था। मारी का तो हर क्षण कीमती था।

यहीं मारी दिन बिताने लगी—एकाग्र साधना में डूबी हुई, पढ़ने-लिखने में व्यस्त।

मारी को अध्ययन में बहुत आनंद आता। खासकर प्रोफेसर पॉल आपेल के भाषणों में। प्रोफेसर आपेल के भाषण सुनती वह कभी न थकती, कभी न अघाती।

ग्रह! उपग्रह! नक्षत्र! हज़ारों-लाखों-करोड़ों मीलों की दूरियां! प्रोफेसर आपेल इनके संबंध मे कुछ इस विधि से बताते मानो जादू का तमाशा दिखा रहे हों।

वह कहते, " लो, देखो! मैं सूरज को हाथ में लेकर नचाता हूं...!"

भौहों के नीचे दबी मारी की आंखें चमक उठतीं! वाह री निराली दुनिया! मधुर संगीत के स्वर में बंधा हुआ यह अनोखा विश्व!...'मैं सूरज को हाथ में लेकर नचाता हूं!'

परीक्षा ज्यों-ज्यों नज़दीक आती, मारी अधिकाधिक खोई-खोई दिखाई देती। खाने-पीने तक की सुध न रहती। घर को गरम रखने के लिए आग जलाना भी अक्सर भूल जाती। लिखते-लिखते ठंड से उंगलियां सिकुड़ जातीं तब कहीं ध्यान आता कि आज कोयला लाना भूल गई थी। जब बहुत भूख लगती तो पोलैण्ड से अपने साथ लाया स्पिरिट-लैम्प जलाकर एक प्याला चाय गरम कर लेती। यही उसका उस दिन का भोजन होता। खाना बनाने में तो आखिर समय लगता है न! सो मारी को खाना बनाना भी अखरता। काशिमिर और ब्रोन्या के मित्र अक्सर मारी की खिल्ली उड़ाते, "सुना भाई? हमारी

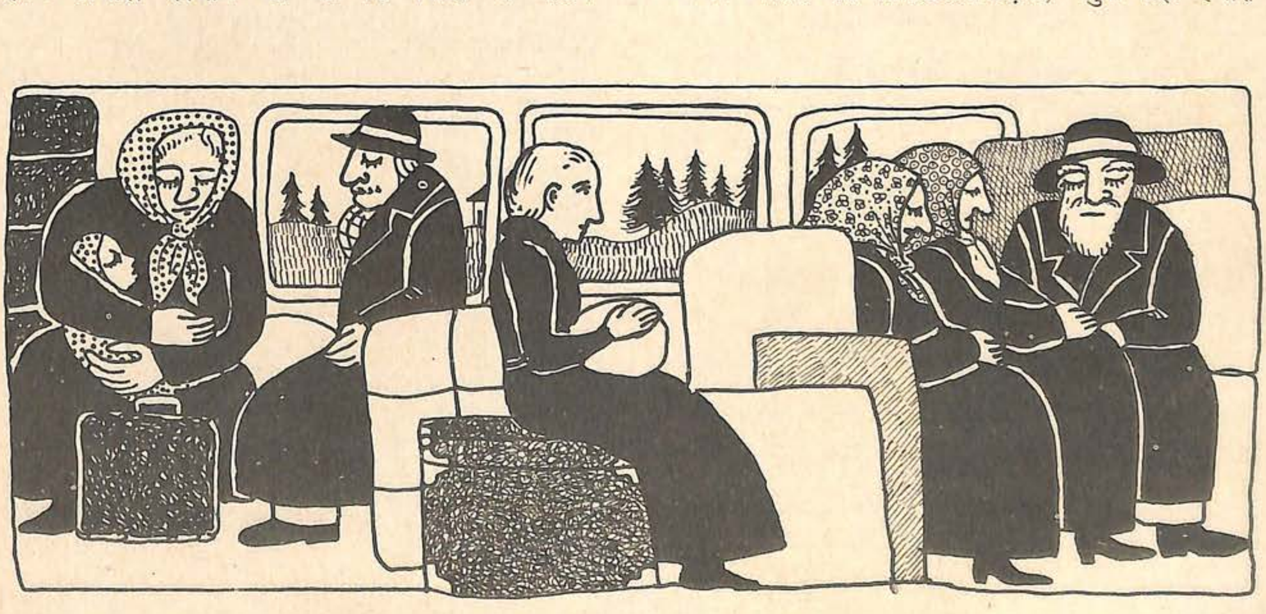

मारी स्क्लोडोव्स्का तो शोरबा पकाना तक नहीं जानती।''

लेकिन कितने दिन चलता इस तरह? धीरे-धीरे मारी का शरीर निढाल हो चला। एक-आध बार तो वह बेहोश तक हो गई। लेकिन, वह कमजोर क्यों होती जाती है, क्यों बेहोश हो जाती है, इसका रहस्य उसकी समझ में न आया। निदान जो होना था वही हुआ। एक दिन उसकी शक्ति ने जवाब दे दिया।

एक दिन की बात है।

कालिज की अपनी एक सहेली के सामने ही मारी बेहोश हो गई। सहेली बेचारी घबड़ा गई। भागी-भागी काशिमिर और ब्रोन्या के घर पहुंची। काशिमिर भी काम-धाम छोड़कर भागे और छै-तल्ले वाले मकान में पहुंचे। कमरे में घुसते ही उन्होंने सतर्कता से चारों ओर देखा।

यह क्या? मान्या खाना पकाती है, इसका कोई चिन्ह नहीं! कड़े स्वर में उन्होंने पूछा, ''मारी! तुमने क्या खाना खाया है आज?''

''आज? याद नहीं पड़ता। हां, खाया तो है कुछ देर पहले।''

''मैं पूछता हूं क्या खाया है?''

''खाया है... यही... कुछ फल और... और बहुत कुछ...।''

अब काशिमिर का क्रोध उबल पड़ा। आव देखा न ताव, तुरंत गाड़ी की, और ले गए मारी को अपने घर। ब्रोन्या अपनी बहन की सेवा में तन-मन से जुट गई। देखते ही देखते मारी के चहेरे की स्वाभाविक लाली लौट आई। स्वस्थ होकर मारी ने विदा मांगी। लेकिन वे लोग क्यों मानने लगे? आखिर मारी ने बार-बार विश्वास दिलाया कि वह अपने शरीर की पूरे जतन से देख-भाल करेगी। तभी ब्रोन्या ने उसे वहां से हटने की इजाजत दी।

अब आ पहुंचे नतीजे के दिन। बड़ी बेसब्री से कटे ये दिन। और...

एक दिन मारी यूनिवर्सिटी पहुंची। उसे मालूम हुआ कि वह प्रथम उत्तीर्ण हुई है। सब के सब अचम्भे में आ गए।

भीड़ की भीड़ उसे बधाई देने आई।

लेकिन मारी? मारी सबसे बचकर अपने छोटे से कमरे में भाग आई। वहीं से वह पोलैण्ड के लिए रवाना हो गई।

बापू की दुलारी मान्या, फिर बापू के पास लौट चली।

लौटकर घर पहुंची तो मान्या ने देखा कि घर की हालत बहुत खराब है। उसका दिल बैठ गया। ऊंची शिक्षा के लिए दुबारा पेरिस जाने की कोई संभावना न दिखाई देती। लेकिन इस बार भी पिछली बार की तरह उसे एक अच्छा मौका मिल गया। एक थीं धनी पोलिश महिला। वह मान्या को बहुत मानती थीं। कोशिश करके उन्होंने उसे ''अलेक्जान्द्रोविच स्कॉलरशिप'' दिला दी।

अब मारी दुगने उत्साह से पेरिस लौटी। हालांकि, उसकी आर्थिक दशा इस बार पिछली बार से भी ज़्यादा खराब थी। चादर का एक कोना खींचती, तो दूसरा हट जाता। खर्चा किसी तरह पूरा न पड़ता। उसका एक बहुत पुराना साथी था : जूता। उससे भी अब बिछोह के दिन आ गए थे। घिसटते-घिसटते बेचारे ने मुंह फैला दिया था। अब तो नया जूता खरीदना होगा। दूसरा कोई चारा नहीं। उसने नया जूता खरीदा तो हाथ की रही-सही पूंजी भी गायब। घर में आग जलाने तक को पैसा नहीं। कमरा इस बार भी छै-तल्ले पर ही लिया था। छै-तल्ले पर का कमरा, कड़ाके की सर्दी। सर्दी में घर हो जाता जैसे बर्फ। पढ़ते-पढ़ते दांत किट-किट-किट-किट बोलने लगते। ठंड के मारे रात में पलक न लगती। सर्दी हड्डियों को काटे देती थी।

दो बरस तक किसी तरह जोड़-जोड़कर बचाए दो कपड़ों में मारी ने दिन काटे थे। इन कपड़ों का रंग तक उड़ चला था अब। गर्म कोट तार-तार हो रहा था, मानो बिल्कुल जवाब दे बैठने की धमकी दे रहा हो।

मारी रात को अपना ट्रंक खोलती। वही टूटा-फूटा ट्रंक। ट्रंक से वह निकालती कपडे-लत्ते। इन्हीं कपड़ों को बदन से लपेट

कर सो जाती। लेकिन सर्दी? कम्बख्त सर्दी तब भी हटने का नाम न लेती। अब तो मारी एक कुर्सी खींचती और उसे भी उलटकर अपने ऊपर डाल लेती और आंखें बंद करके सोने की कोशिश करती। उधर, पानी के बर्तन में बर्फ की मोटी तह जम जाती।

ऐसी थी मारी। अपनी तरफ से एकदम बेखबर। काम की धुन में बिल्कुल दीवानी।

सो, मारी एक अध्यापक के मन को भा गई। अध्यापक महोदय का नाम था पियरे क्यूरी। थे तो वह अभी तरुण ही, लेकिन बड़े प्रतिभाशाली वैज्ञानिक थे। मारी को उन्होंने छात्रा के रूप में देखा था। उन्हें मारी में असाधारण योग्यता मिली थी। मारी को उन्होंने अपनी जीवन-संगिनी बनाना चाहा। उन्होंने सोचा, हम दोनों मिलकर सारा जीवन विज्ञान की साधना में लगा देंगे। एक दिन उन्होंने मारी के सामने विवाह का प्रस्ताव रख ही तो दिया।

मारी बड़े असमंजस में है, क्या करे, क्या न करे। पियरे क्यूरी हैं फ्रांसवासी। उनसे विवाह करने का मतलब यह है कि सारा जीवन फ्रांस में बिताना होगा। भला मारी कैसे हमेशा के लिए अपने देश को छोड़ सकती थी? मारी ने आपत्ति की, "पोलैण्ड निवासियों को अपना देश छोड़ने का अधिकार नहीं है।" पियरे ने उत्तर दिया, "अच्छी बात है! चलो, मैं ही फ्रांस छोड़ दूंगा।"

अब तो मारी और भी संकट में। पियरे क्यूरी जैसे वैज्ञानिक पोलैण्ड जाएंगे तो गुलाम पोलैण्ड में करेंगे क्या? बहुत हुआ तो मास्टरी कर लेंगे। यही न! पोलैण्ड में वैज्ञानिक

खोज करने की भी तो कोई सुविधा न थी। मास्टरी के अलावा जीविका का दूसरा कोई साधन पोलैण्ड में हो नहीं सकता था। अंत में मारी के भाई-बहनों ने सलाह दी कि वह विवाह कर ले और फ्रांस में रहे।

पियरे के पिता थे डाक्टर। बड़े उदार, बड़े शिष्ट। पियरे की माताजी भी बड़ी तेजस्वी थीं। जितनी तेजस्वी थीं, उतनी ही साहसी भी। सामाजिक रूढ़ियों, सड़े-गले संस्कारों के पीछे आंखें मूंदकर चलने वाले न थे ये लोग।

अपने बेटों को भी उन्होंने आजादी से जीवन बिताना सिखाया था।

पियरे के भाई थे जैक। पियरे और जैक दोनों में असाधारण प्रतिभा थी। बचपन से ही दोनों वैज्ञानिक खोज और प्रयोगों में बहुत आगे बढ़ गए थे। पियरे ने सोलह वर्ष की उम्र में ही बी.एस-सी. की परीक्षा पास कर ली थी, वह भी सम्मान के साथ। इतना ही नहीं! अन्वेषण के क्षेत्र में नए-नए अन्वेषण करके, नई-नई खोजें करके, दोनों भाइयों ने सबको आश्चर्य में डाल दिया था। लेकिन विश्वविद्यालय के अधिकारियों ने उनकी खोजों का जो पुरस्कार दिया वह सिर्फ यह कि उनकी पीठ ठोंक दी। बस!

अठारह वर्ष की उम्र। इसी उम्र में पियरे ने एम.एस-सी. की परीक्षा पास कर ली। उन्नीसवें वर्ष में वह प्रयोगशाला में सहायक के पद पर नियुक्त हो गए। जैक को या उन्हें इसके अलावा न तो कोई पुरस्कार मिला, न उपाधि। उल्टे, दोनों भाइयों को अलग करने का इंतजाम कर दिया गया। जैक को एक कालेज में अध्यापक होकर चले जाना पड़ा। पियरे को "स्कूल ऑफ फिजिक्स एंड केमिस्ट्री" में पढ़ाने का काम मिला।

अब तक एक साल बीत चुका था। बहुत उधेड़बुन के बाद मारी पियरे के साथ विवाह करने को राजी हो गई। बहुत से लोगों ने तो उसके विवाह की आशा ही छोड़ दी थी। अपनी धुन की पक्की लड़की! एक लीक पर चलने वाली! अपने देश पर जान देने वाली! वह शादी करेगी पियरे से और रहेगी फ्रांस में?

आखिर एक दिन नाते-रिश्तेदारों, सगे-संबंधियों, घनिष्ट मित्रों की शुभ कामनाओं सहित मारी स्क्लोडोव्स्का मादाम क्यूरी बन गई। पियरे और मारी का यह संयोग, विज्ञान के क्षेत्र में सचमुच एक ऐतिहासिक घटना है।

अब उन्होंने गृहस्थी जमाई। दोनों ही काम के पीछे दीवाने थे। छोटी-मोटी घरेलू बातों में कीमती समय बरबाद न

हो, इसका उन्होंने पूरा बंदोबस्त कर लिया था। फिर भी, मामूली मध्यवर्गी परिवारों की तरह इन दोनों को भी परेशानियों में उलझना ही पड़ता, परेशानियों से पूरी तरह मुक्ति न मिल पाती। हिसाब-किताब रखना, बाजार-हाट करना, नाश्ता-खाना बनाना, कपड़े- लत्ते धोना... सब कुछ उन्हें ही तो करना था। मारी स्क्लोडोव्स्का तो शोरबा बनाना तक न जानती थी। लेकिन, मादाम क्यूरी को तरह-तरह के पकवान बनाने सीखने पड़े। पाक्विद्या सीख ही तो ली मादाम क्यूरी ने वह ऐसी तरकारियां बनाती जिन्हें पकाने में समय तो कम लगता लेकिन जायका होता बढ़िया।

पर, जिनके लिए वह यह सब करतीं उन पियरे महोदय को इसका ध्यान भी न रहता कि वह क्या खा रहे हैं, क्या नहीं। एक बार एक भले घर की महिला ने पियरे साहब को एक मिठाई बनाकर खिलाई। पियरे किसी ध्यान में डूबे मिठाई और खाना खाते रहे। खाना खत्म कर चुकने पर भी मिठाई के बारे में उन्होंने कुछ नहीं कहा। सो, उन महिला से अब और सब्र न किया गया। पूछ बैठीं, ''कैसी लगी आपको?''

''क्या?''

''मिठाई, और क्या?''

''ओह! मैं मिठाई खा रहा था!'' ताज्जुब से पियरे ने उस महिला की ओर देखा। महिला भौंचक्की रह गई। क्या कहे, क्या न कहे, समझ में न आया।

मौका मिलने पर मारी पियरे के साथ ससुराल भी रह आती। काम की धुन वहां भी पियरे का साथ न छोड़ती। वहां उनके लिए दो अलग-अलग कमरे ठीक कर दिए गए थे।

नाटक-थियेटर जाने का मौका भी उन्हें मुश्किल से मिलता। वारसा में मारी की छोटी बहन हेला की शादी हुई। लेकिन काम का दबाव इतना था कि पियरे उसमें शामिल न हो सके।

विश्वविद्यालय की परीक्षा में इस बार भी मारी प्रथम आई। बहुत दिनों के बाद अब दोनों ने साइकिल पर झोला टांगा और बड़े उत्साह से पहाड़ पर छुट्टियां बिताने चल पड़े।

सन् 1897। मारी की गोद में पहली संतान आई। मोटी-सलोनी लड़की! मां की गोद उजागर करने वाली! नाम रखा गया इरीन!

इरीन के कारण मारी को शुरू-शुरू में काफी तकलीफ उठानी पड़ी। उसे नहलाना-धुलाना, खिलाना-पिलाना, सुलाना और फिर खाना बनाकर, बाज़ार होकर प्रयोगशाला जाना।

जैसा कि स्वाभाविक था, कठोर परिश्रम से मारी का स्वास्थ्य गिरने लगा। इरीन की देख-भाल के लिए दायी रखनी पड़ी। उधर इरीन के बाबा भी तो थे। इरीन के पैदा होने के थोड़े दिनों बाद ही पियरे की मां की मृत्यु हो गई। पियरे के पिता, डाक्टर क्यूरी, अब बेटे और बहू के साथ ही रहते। इरीन उनसे बहुत हिल गई थी। मारी को इससे लाभ ही हुआ। वह बेटी को बाबा के हाथों सौंपकर, निश्चिन्त होकर, प्रयोगशाला में काम कर सकती थी।

इरीन क्यूरी ने बड़ी होकर माता-पिता के यश में चार-चांद लगाए। मारी क्यूरी की तरह उसकी गिनती भी संसार के प्रसिद्ध वैज्ञानिकों में हुई। इरीन और उसके पति जोलियो क्यूरी भी मारी और पियरे क्यूरी की तरह थे। जोलियो क्यूरी ने पदार्थ विज्ञान में नोबल पुरस्कार पाया और विज्ञान को समाज के कल्याण में लगाने के लिए जी-जान से काम किया।

(अगले अंक में जारी)

लेखिका : गीता बंदोपाध्याय
अनुवाद : त्रिभुवन नाथ
सभी चित्र : कैरन

टैनग्राम

यह चीन देश की एक हज़ार वर्ष पुरानी पहेली है। इसे हमने चकमक के पहले अंक यानि जुलाई, 85 में भी प्रकाशित किया था। किसी भी साइज़ के चौकोर गत्ते को यहां दिखाए गए सात टुकड़ों में काट लो। अब इन सातों टुकड़ों को जोड़-जोड़ कर जानवरों, मनुष्यों आदि की भिन्न-भिन्न आकृतियां बनाओ। हर आकृति में सातों टुकड़े लगने चाहिए। यहां ढेर सारी आकृतियां दी गई हैं, बनाकर देखो तो भला।

☐ अरविंद गुप्ता

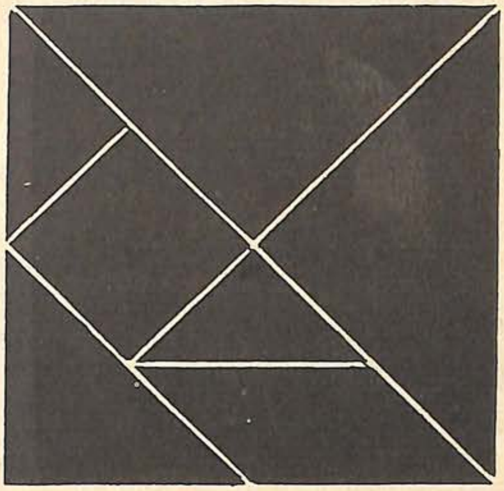

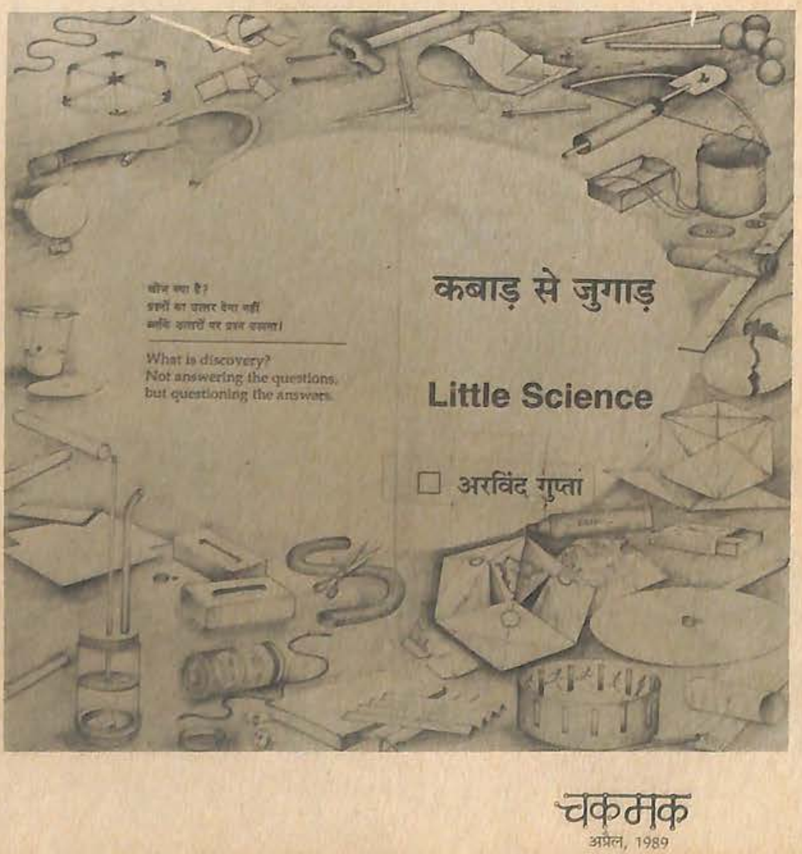

तुममें से कईयों ने **'खेल खेल में'** पुस्तिका देखी होगी। इसमें विज्ञान के कुछ सस्ते, सरल और रोचक प्रयोग थे। ऐसे तीस नए प्रयोग, खेल **कबाड़ से जुगाड़** पुस्तिका के रूप में प्रकाशित हुए हैं। इसे एकलव्य ने ही प्रकाशित किया है।

यदि तुम भोपाल, धार, उज्जैन, देवास, होशंगाबाद, हरदा या पिपरिया में रहते हो तो इसे एकलव्य केंद्र से प्राप्त कर सकते हो।

राशि मनीआर्डर/ड्राफ्ट से एकलव्य के नाम में इस पते पर भेजें—
एकलव्य, ई-1/208, अरेरा कालोनी,
भोपाल-462 016

एक प्रति सहयोग राशि — तीन रुपए
डाक से बुलवाने पर — पांच रुपए

प्रदीप कुमार गौर, खिरकिया

पंजीयन क्रमांक 1317/सी/85 के अंतर्गत भारत के समाचार-पत्रों के रजिस्ट्रार द्वारा पंजीकृत।
डाक पंजीयन क्रमांक BPL/DN/MP/431/89

मारिया जोसेफ, नौ वर्ष, दिल्ली

एकलव्य के लिए विनोद रायना द्वारा प्रकाशित।
कंपोज़र्स - अभिषेक। मुद्रक - भंडारी ऑफसेट प्रिंटर्स, भोपाल।